नवम्बर, 2018
I.S.S.N. : 2457-0478

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

Cover II

प्रस्तावित संपादक-मंडल

डा. जी. नारायण राजू,
सचिव, विधायी विभाग

डा. रीटा वशिष्ठ, अपर सचिव,
विधायी विभाग

श्री एस. आर. ढलेटा,
सेवानिवृत्त संयुक्त सचिव एवं
विधायी परामर्शी, विधायी विभाग

डा. सुरेन्द्र कुमार शर्मा, प्रिन्सिपल,
विधि विभाग, डी आई आर डी, गुरु
गोविंद सिंह इन्द्रप्रस्थ विश्वविद्यालय

श्री ए. के. अवस्थी,
सेवानिवृत्त प्रोफेसर एवं डीन
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

श्री एल. आर. सिंह,
प्रोफेसर एवं डीन इलाहाबाद
विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

श्री कृष्ण गोपाल अग्रवाल,
सेवानिवृत्त संपादक, वि.सा.प्र.

श्री अनुराग दीप,
एसोसिएट प्रोफेसर,
भारतीय विधि संस्थान

डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय,
प्रधान संपादक

श्री कमला कान्त,
संपादक

श्री अविनाश शुक्ला,
संपादक

श्री असलम खान,
संपादक

सहायक संपादक : श्री पुण्डरीक शर्मा

उप-संपादक : सर्वश्री महीपाल सिंह और जसवन्त सिंह

परामर्शदाता : सर्वश्री दयाल चन्द ग्रोवर, महमूद अली खां और विनोद कुमार आर्य

ISSN- 2457-0478

कीमत : डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ₹ 125/-

© 2018 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

---

1. प्रकाशन नियंत्रक, भारत सरकार, सिविल लाइन्स, दिल्ली-110054.
2. प्रधान संपादक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा................................. द्वारा मुद्रित ।

पी एल डी (सी. डी)-11-2018 आई.एस.एस.एन. 2457-0478

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

नवम्बर, 2018 अंक - 11

प्रधान संपादक
डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय

संपादक
अविनाश शुक्ला

सत्यमेव जयते

विधि साहित्य
प्रकाशन

(2018) 2 सि. नि. प.

विधि साहित्य प्रकाशन

विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

विक्रय कार्यालय : 1. प्रकाशन नियंत्रक, भारत सरकार, सिविल लाइन्स, दिल्ली-110054.
2. सहायक प्रबंधक, कारबार अनुभाग, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, आई. एल. आई. बिल्डिंग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 । दूरभाष : 011-23385259, 23387589, फैक्स : 011-23387589, ई-मेल : am.vsp-molj@gov.in

संपादकीय

क्या वास्तव में किसानों की कर्ज माफी किसानों, कृषि और देश की अर्थव्यवस्था के हित में है ? इसका उत्तर यह है कि कर्ज माफी किसानों की पिछली देनदारी का आंशिक हल तो है पर यह किसानों की भावी कृषि जरूरतों का पूर्ण समाधान नहीं है । आज किसानों में यह भाव घर कर गया है कि बैंकों से कृषि के प्रयोजनार्थ लिए गए कर्ज को वापस चुकाने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि आज नहीं तो कल सरकार कर्ज माफी करेगी ही । चुनावों में राजनीतिक दल किसानों को लुभाने के लिए कर्ज माफी का वायदा करते हैं किन्तु उन्हें न तो राजकोष की चिन्ता होती है और न ही आम आदमी के ऊपर टैक्स के बोझ की । चुनाव के पश्चात् जब वही राजनीतिक दल सत्तासीन होते हैं तो उन्हें पता चलता है कि राजकोष में धन का अभाव है और वे अपना चुनावी वायदा पूरा नहीं कर सकते । तब उनके द्वारा चलायी जाने वाली सरकार ओवरड्राफ्ट की सुविधा का प्रयोग करती है और स्वयं ही कर्ज में डूब जाती है ।

भारतीय रिजर्व बैंक के अनुसार पंजाब, उत्तर प्रदेश, पश्चिमी बंगाल जैसे कृषि सम्पन्न राज्य लाखों करोड़ रुपए के कर्ज में डूबे हुए हैं जिसका सबसे बड़ा कारण किसानों की कर्ज माफी है । आरम्भ में तो सरकारों ने ओवरड्राफ्ट सुविधा का लाभ लेकर कर्ज माफी का अपना वायदा पूरा कर दिया किन्तु बाद में राज्यों के बढ़ते हुए कर्ज को देखते हुए रिजर्व बैंक ने ओवरड्राफ्ट सुविधा पर रोक लगा दी । इसी कारणवश बैंकों ने किसानों के संबंध में भी वही कार्यवाहियां आरम्भ कर दीं जो उद्योगपतियों के संबंध में की जाती हैं । बैंक उद्योगपतियों के कर्ज को माफ नहीं करते बल्कि उसे अपने खातों में फंसे हुए कर्ज (एन. पी. ए.) के रूप में दिखाते हैं जिसकी देनदारी राइट आफ कर दिए जाने के बाद भी बनी रहती है । अतः नतीजा यह हुआ कि राज्य सरकारें कर्जमाफी की घोषणा तो कर देती हैं लेकिन वास्तव में कर्ज माफ नहीं होता और इसी कारणवश किसानों की आत्महत्याओं के समाचार आते रहते हैं ।

अतः मेरे विचार से कर्ज माफी किसानों, कृषि और देश की अर्थव्यवस्था के हित में नहीं है बल्कि आवश्यकता इस बात की है कि बीज से बाजार तक किसानों का सशक्तिकरण किया जाए और उनको इस योग्य

बनाया जाए कि वे बैंकों द्वारा दी जानी वाली सुविधाओं का लाभ भी ले सके और कर्ज की रकम वापस भी लौटा सकें ।

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका प्रतिमाह आपके अवलोकनार्थ उच्च न्यायालयों द्वारा पारित प्रतिवेद्य निर्णय, जो अधिवक्ताओं, विधि छात्रों, न्यायाधीशों और अकादमीशियनों के लिए महत्वपूर्ण होते हैं, का प्रकाशन करता है । आप लोगों से प्राप्त सुझावों के आधार पर हमको अपने पत्रिका की गुणवत्ता को सुधारने और अपने कार्य को और अधिक निखारने की शक्ति प्राप्त होती है । कृपया अपने अमूल्य सुझावों से हमें अवगत करते रहें और हमारा मार्गदर्शन करते रहें ।

अविनाश शुक्ला
संपादक

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

नवम्बर, 2018

निर्णय-सूची

	पृष्ठ संख्या
आयशा **बनाम** निदेशक, मुद्रण निदेशालय, तिरुअनन्तपुरम	585
जॉन ओरांव और अन्य **बनाम** बरदानी उरेन और अन्य	640
टी. गंगकाक इन्टरप्राइसेज, (मैसर्स) अरुणाचल प्रदेश **बनाम** अरुणाचल प्रदेश राज्य और अन्य	599
दीपक कुमार सिन्हा **बनाम** विनय कुमार सिन्हा	632
नारायण और अन्य **बनाम** चौथमल और अन्य	686
नेहा रवाड़िया (श्रीमती) **बनाम** अवधेश कुमार	672
पूजा (श्रीमती) **बनाम** विजय चैतन्य	569
प्रणव ए. एम. और एक अन्य **बनाम** सचिव, इंगनदियूर ग्राम पंचायत और एक अन्य	591
मीनू देवी **बनाम** अमित कुमार	646
राजेन्द्र कुमार झा **बनाम** मनोहर लाल सोनी और अन्य	613
राधाकृष्णन सी. **बनाम** मुख्य प्रबंधक, स्टेट बैंक आफ इंडिया और एक अन्य	578
सीमाशुल्क आयुक्त **बनाम** आरिफ खिंची	659
स्टेट ट्रेडिंग कार्पोरेशन लि. (मैसर्स) **बनाम** सीमाशुल्क आयुक्त	669

संसद् के अधिनियम

हिन्दू दत्तक तथा भरण-पोषण अधिनियम, 1956 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ	1 — 15

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

कुटुंब न्यायालय अधिनियम, 1984 (1984 का 66)

– धारा 19 [सपठित सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 9, नियम 13 और धारा 151 तथा परिसीमा अधिनियम, 1968 की धारा 5] – पति द्वारा विवाह-विच्छेद हेतु आवेदन फाइल किया जाना – कुटुंब न्यायालय विवाह-विच्छेद का एकपक्षीय डिक्री और आदेश पारित किया जाना – तत्पश्चात् पत्नी द्वारा एकपक्षीय रूप से पारित डिक्री और आदेश को अपास्त किए जाने हेतु आवेदन फाइल किया जाना जिसे कुटुंब न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया जाना – पत्नी द्वारा कुटुंब न्यायालय के समक्ष सुनवाई की तारीखों पर अनुपस्थिति के संबंध में युक्तिसंगत स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया जाना – कुटुंब न्यायालय द्वारा पारित विवाह-विच्छेद की डिक्री और आदेश अपास्त होने योग्य हैं ।

नेहा रवाड़िया (श्रीमती) बनाम **अवधेश कुमार** 672

विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 (1963 का 47)

– धारा 10, 34 और 38 – संविदा का विनिर्दिष्ट पालन, विक्रय पत्र का रजिस्ट्रीकरण और स्थायी निषेधाज्ञा – वादी द्वारा स्टाम्प पेपर खरीदे जाने के पश्चात् उन पर दस्तावेज का निष्पादन न कराए जाने, सम्पूर्ण विक्रय राशि का संदाय कर दिए जाने के बावजूद उप रजिस्ट्रार के समक्ष विक्रय विलेख का रजिस्ट्रीकरण न कराए जाने – प्रतिवादी द्वारा विक्रय करार के निष्पादन से इनकार किए जाने के बावजूद उसके हस्ताक्षरों की जांच हस्तलेखा विशेषज्ञ द्वारा न कराए जाने और हस्तलेखा विशेषज्ञ को साक्षी के रूप में न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत न किए जाने के कारण उसके द्वारा विक्रय करार के विनिर्दिष्ट पालन के प्रयोजनार्थ फाइल किया गया वाद पोषणीय नहीं है और खारिज किए जाने योग्य हैं ।

नारायण और अन्य बनाम **चौथमल और अन्य** 686

पृष्ठ संख्या

– धारा 20 [सपठित संपत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882 की धारा 54] – विक्रय करार – विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए वाद – करार इस शर्त के अध्यधीन किया जाना कि विक्रेता परिसर को अपने किराएदार से खाली कराकर विक्रय विलेख निष्पादित करेगा – वैवेकिक अनुतोष – न्यायालय मात्र करार के निष्पादन के आधार पर विनिर्दिष्ट अनुतोष की डिक्री पारित करने के लिए बाध्य नहीं है – तथापि, प्रतिवादी क्रेता ब्याज सहित मूल धनराशि वापस पाने का हक़दार है ।

राजेन्द्र कुमार झा बनाम **मनोहर लाल सोनी और अन्य** 613

संविदा अधिनियम, 1872 (1872 का 9)

– धारा 171 [सपठित पेंशन अधिनियम, 1871 की धारा 11] – कर्मचारी का पेंशन खाता – खातेदार द्वारा बैंक से कार ऋण लिया जाना – कार ऋण की अदायगी में विफ़लता – बैंक द्वारा कार ऋण की पेंशन खाते से मुजराई – ऋण अंतिम रूप से मुजरा होने तक खाते के संचालन पर रोक – न्यायोचित्य – चूंकि खाता अनन्य रूप से पेंशन का संवितरण करने के लिए खोला जाता है और ऐसा खाता बैंक के सामान्य कारबार के अन्तर्गत नहीं आता है – अतः बैंक पेंशन खाते के अपने ग्रहणाधिकार का प्रयोग करके ऐसी मुजराई नहीं कर सकता – बैंक ऐसे खाते के संचालन को विवर्जित नहीं कर सकता ।

राधाकृष्णन सी. बनाम **मुख्य प्रबंधक, स्टेट बैंक आफ इंडिया और एक अन्य** 578

संविधान, 1950

– अनुच्छेद 14 [सपठित आई. टी. बी. का खंड 23] – निविदा – निविदाकर्ता द्वारा निविदा से संबंधित दस्तावेजों के साथ दो से अधिक कार्यों के बारे में शपथपत्र पेश न किया जाना – प्रभाव – यह आधार निविदा बोली की खारिजी के लिए उपयुक्त नहीं है क्योंकि ऐसी कोई

पृष्ठ संख्या

कमी खंड 23 के अधीन सुधार्य है ।

टी. गंगकाक इन्टरप्राइसेज, (मैसर्स) अरुणाचल प्रदेश बनाम **अरुणाचल प्रदेश राज्य और अन्य** 599

– अनुच्छेद 14 – सरकारी कार्यों के लिए निविदा – बोली की खारिजी – खारिजी की सूचना निविदा खोलने वाले कार्यालय में चस्पा न करके दूसरे स्थान पर स्थित खंड कार्यालय में चस्पा किया जाना – दूसरे कार्यालय में बोली की खारिजी को प्रदर्शित किया जाना न्यायसंगत नहीं है ।

टी. गंगकाक इन्टरप्राइसेज, (मैसर्स) अरुणाचल प्रदेश बनाम **अरुणाचल प्रदेश राज्य और अन्य** 599

– अनुच्छेद 24 और 226 – निविदा बोली की खारिजी – निविदा आबंटन को विलंब से आक्षेपित किया जाना – रिट फाइल करने के समय तक परियोजना का अधिकतर कार्य पूर्ण हो जाना – ऐसे किसी मामले में रिट याची को कोई अनुतोष मंजूर करना लोक हित में नहीं होगा ।

टी. गंगकाक इन्टरप्राइसेज, (मैसर्स) अरुणाचल प्रदेश बनाम **अरुणाचल प्रदेश राज्य और अन्य** 599

– अनुच्छेद 25 – धार्मिक स्वतंत्रता – हिन्दू धर्म से इस्लाम में संपरिवर्तन – सरकारी अभिलेखों में परिवर्तन के लिए आवेदन – मुद्रण निदेशक द्वारा अधिसूचना के लिए मान्यताप्राप्त संस्था से संपरिवर्तन प्रमाणपत्र मांगा जाना – विधिमान्यता – संविधान के अधीन गारंटीकृत धर्म को मानने की स्वतंत्रता का अधिकार किसी निर्बंधन के अध्यधीन नहीं है – अतः प्राधिकारी द्वारा ऐसा प्रमाणपत्र मांगा जाना धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार का अतिक्रमण है – सरकारी अभिलेखों में परिवर्तन के लिए नाम और धर्म के परिवर्तन की घोषणा ही परिवर्तन के लिए पर्याप्त है ।

आयशा बनाम **निदेशक, मुद्रण निदेशालय, तिरुअनन्तपुरम** 585

पृष्ठ संख्या

– अनुच्छेद 136 [सपठित कुटुंब न्यायालय अधिनियम, 1984 की धारा 19] – विवाह-विच्छेद की एकपक्षीय डिक्री और आदेश के विरुद्ध उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल किया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित किया जाना – यद्यपि पति उच्च न्यायालय द्वारा विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित किए जाने और उस डिक्री के विरुद्ध अपील किए जाने और उस डिक्री के विरुद्ध अपील फाइल न किए जाने की स्थिति में पुनर्विवाह किया जा सकता है किन्तु विवाह के पक्षों का यह कर्तव्य है कि वे इस बात को सुनिश्चित कर लें कि उच्च न्यायालय के आदेश के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय के समक्ष कोई विशेष इजाजत याचिका फाइल नहीं की गई है ।

नेहा रवाड़िया (श्रीमती) बनाम **अवधेश कुमार** 672

साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1)

– धारा 65 – द्वितीयक साक्ष्य – वाद का अन्तिम बहस के लिए नियतन – बहस के प्रक्रम पर दस्तावेज़ साक्ष्य में पेश किया जाना – शिकायत की सत्यापित फोटो प्रति को साक्ष्य में स्वीकार किए जाने के लिए आवेदन – खारिजी – दस्तावेज 'लोक दस्तावेज' न होने के कारण बहस के प्रक्रम पर स्वीकार न किया जाना न्यायोचित है ।

जॉन ओरांव और अन्य बनाम **बरदानी उरेन और अन्य** 640

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5)

– धारा 47 और आदेश 21, नियम 23 – डिक्री की निष्पादन कार्यवाही में आक्षेप – सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अधीन आवेदन में समान मुद्दा उठाया जाना – चूंकि विवाद्यक का रिट याचिका खारिज किए जाने के समय विनिश्चय कर दिया गया था – अतः निष्पादन कार्यवाही में वही मुद्दा उठाने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जा सकता ।

दीपक कुमार सिन्हा बनाम **विनय कुमार सिन्हा** 632

पृष्ठ संख्या

सीमाशुल्क अधिनियम, 1962 (1962 का 52)

– धारा 2(34) और 28(11) – राजस्व अन्वेषण निदेशालय द्वारा कारण बताओ नोटिस जारी किए जाने की अधिकारिता का प्रयोग किया जाना – राजस्व अन्वेषण निदेशालय कारण बताओ नोटिस जारी करने के प्रयोजनार्थ समुचित प्राधिकारी है या नहीं – केन्द्रीय उत्पादशुल्क और सीमाशुल्क बोर्ड द्वारा अधिसूचना जारी किया जाना जिसके द्वारा राजस्व अन्वेषण निदेशालय के अपर महानिदेशक को सम्मिलित करते हुए विभिन्न प्राधिकारियों को कार्य समनुदेशित किया जाना – राजस्व अन्वेषण निदेशालय के प्राधिकारी अधिसूचना जारी किए जाने की तारीख से कारण बताओ नोटिस जारी करने के लिए सशक्त हैं ।

सीमाशुल्क आयुक्त बनाम **आरिफ खिंची** 659

– धारा 129क [सपठित समय-सीमा अधिनियम, 1963 की धारा 5] – उच्च न्यायालय द्वारा सीमाशुल्क, उत्पादशुल्क और सेवाकर अपीली अधिकरण के समक्ष समय-सीमा द्वारा बाधित अपील फाइल किया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करते हुए आक्षेपित आदेश की नकल की प्राप्ति के तीस दिनों के भीतर अधिकरण के समक्ष अपील फाइल करने की अनुज्ञा दिया जाना – उच्च न्यायालय अधिकरण के समक्ष अपील फाइल करने की अनुज्ञा प्रदान कर सकता है और यदि उच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित समयावधि के भीतर अपील फाइल कर दी जाती है तो अपील को समय-सीमा द्वारा बाधित नहीं माना जाएगा ।

स्टेट ट्रेडिंग कार्पोरेशन लि. (मैसर्स) बनाम **सीमाशुल्क आयुक्त** 669

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25)

– धारा 8 [सपठित केरल विवाह रजिस्ट्रीकरण (सामान्य) नियम, 2008 का नियम 6 और नियम 10] – एक पक्षकार द्वारा धर्म परिवर्तन – विवाह के रजिस्ट्रीकरण

पृष्ठ संख्या

के लिए आवेदन – रजिस्ट्रार द्वारा विवाह की विधिमान्यता के संबंध में संदेह होने पर रजिस्ट्रीकरण से इनकार – विधिमान्यता – रजिस्ट्रार ऐसे विवाह को रजिस्ट्रीकृत करने के लिए आबद्ध है – तथापि, वह अपना यह समाधान करने के लिए जांच करा सकता है कि क्या धर्म परिवर्तन विधिमान्य है या नहीं ।

प्रणव ए. एम. और एक अन्य बनाम **सचिव, इंगनदियूर ग्राम पंचायत और एक अन्य** 591

– धारा 13(1)(iक)(iख) – विवाह-विच्छेद के लिए अर्जी – पक्षकारों के बीच 7 वर्ष से अधिक की अवधि से शारीरिक संबंध न होने का प्रकथन – पति द्वारा पत्नी के विरुद्ध क्रूरता बरतने और पति का परित्यजन करने का आरोप लगाया जाना – पत्नी द्वारा पति के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 498क के अधीन संस्थित मामले में दोषमुक्ति का आदेश – पत्नी द्वारा पति को मिथ्या मामले में अन्तर्वलित किया जाना क्रूरता बरतने के बराबर है – विवाह को पुनर्स्थापित करने से कोई प्रयोजन पूरा नहीं होगा – निचले न्यायालय द्वारा पारित विवाह-विच्छेद की डिक्री में हस्तक्षेप करना उचित नहीं होगा ।

मीनू देवी बनाम **अमित कुमार** 646

– धारा 28 व 13-ख [सपठित कुटुंब न्यायालय अधिनियम, 1984 की धारा 19] – पति-पत्नी द्वारा संयुक्त रूप से विवाह-विच्छेद हेतु समावेदन फाइल किया जाना और पारस्परिक सहमति से विवाह-विच्छेद होना – तत्पश्चात् पत्नी का पति पर बल प्रयोग, कपट और दबाव बनाकर विवाह-विच्छेद की डिक्री प्राप्त करने का आरोप लगाया जाना – जहां न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि पारस्परिक सहमति से विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित की गई है तो बाद में पत्नी या पति दोनों में से कोई भी यह आरोप नहीं लगा सकता है कि विवाह-विच्छेद की डिक्री बल प्रयोग, कपट या अनुचित दबाव में प्राप्त की गई है ।

पूजा (श्रीमती) बनाम **विजय चैतन्य** 569

पृष्ठ संख्या

– धारा 28 व 13-ख [सपठित कुटुंब न्यायालय अधिनियम, 1984 की धारा 19] – पारस्परिक सहमति के आधार पर पारित विवाह-विच्छेद की डिक्री के अंतिम होने के पूर्व किसी एक पक्ष द्वारा अपनी सहमति वापस लिए जाने हेतु अभ्यावेदन फाइल किया जाना – प्रभाव – यदि पति या पत्नी दोनों में से कोई भी डिक्री पारित होने की तारीख से पूर्व अपना अभ्यावेदन प्रस्तुत करके अपनी सहमति वापस नहीं लेता तो विवाह-विच्छेद की डिक्री को पारित होने से नहीं रोका जा सकता – परन्तु डिक्री पारित होने के बाद पति-पत्नी दोनों में से किसी के भी अभ्यावेदन पर विचार किया जाना संभव नहीं है ।

पूजा (श्रीमती) बनाम **विजय चैतन्य** 569

पूजा (श्रीमती)

बनाम

विजय चैतन्य

तारीख 22 अगस्त, 2017

न्यायमूर्ति पंकज मित्तल और न्यायमूर्ति राजीव जोशी

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25) – धारा 28 व 13-ख [सपठित कुटुंब न्यायालय अधिनियम, 1984 की धारा 19] – पति-पत्नी द्वारा संयुक्त रूप से विवाह-विच्छेद हेतु समावेदन फाइल किया जाना और पारस्परिक सहमति से विवाह-विच्छेद होना – तत्पश्चात् पत्नी का पति पर बल प्रयोग, कपट और दबाव बनाकर विवाह-विच्छेद की डिक्री प्राप्त करने का आरोप लगाया जाना – जहां न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि पारस्परिक सहमति से विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित की गई है तो बाद में पत्नी या पति दोनों में से कोई भी यह आरोप नहीं लगा सकता है कि विवाह-विच्छेद की डिक्री बल प्रयोग, कपट या अनुचित दबाव में प्राप्त की गई है ।

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25) – धारा 28 व 13-ख [सपठित कुटुंब न्यायालय अधिनियम, 1984 की धारा 19] – पारस्परिक सहमति के आधार पर पारित विवाह-विच्छेद की डिक्री के अंतिम होने के पूर्व किसी एक पक्ष द्वारा अपनी सहमति वापस लिए जाने हेतु अभ्यावेदन फाइल किया जाना – प्रभाव – यदि पति या पत्नी दोनों में से कोई भी डिक्री पारित होने की तारीख से पूर्व अपना अभ्यावेदन प्रस्तुत करके अपनी सहमति वापस नहीं लेता तो विवाह-विच्छेद की डिक्री को पारित होने से नहीं रोका जा सकता – परन्तु डिक्री पारित होने के बाद पति-पत्नी दोनों में से किसी के भी अभ्यावेदन पर विचार किया जाना संभव नहीं है ।

संक्षेप में मामले के तथ्य ये हैं कि पत्नी ने यह अपील आगरा के कुटुंब न्यायालय द्वारा तारीख 11 जनवरी, 2018 को पारित आदेश द्वारा पक्षकारों की पारस्परिक सहमति से 1955 के हिन्दू विवाह अधिनियम की

धारा 13-ख के अधीन पारित विवाह के विघटन की डिक्री के विरुद्ध 1984 के कुटुंब न्यायालय अधिनियम की धारा 19 के साथ पठित 1955 के हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 28 के अधीन फाइल की है । अपीलार्थी-पत्नी की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल ने यह तर्क दिया कि आपसी सहमति पर आधारित विवाह-विच्छेद की डिक्री बल के प्रयोग द्वारा याचिका पर अपीलार्थी-पत्नी के हस्ताक्षर कराकर कपट से प्राप्त की गई, पत्नी पति के घर में परिरुद्ध थी और इस प्रकार उसके हस्ताक्षर ऐसे परिरोध का अनुचित लाभ उठाकर विवाह-विच्छेद की डिक्री पाने के लिए किया गया । कुटुंब न्यायालय दूसरे समावेदन के बिना और वह भी प्रथम समावेदन से छह मास के समापन अवधि से पूर्व 1955 के हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13-ख के अधीन विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित नहीं कर सकता । न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – 1955 के हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 23(1)(खख) भी पारस्परिक सहमति द्वारा विवाह-विच्छेद के मामले में न्यायालयों पर यह बाध्यता अधिरोपित करती है कि सहमति बल, कपट या अनुचित दबाव द्वारा प्राप्त नहीं की गई है । अतः, न्यायालय पारस्परिक सहमति द्वारा विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित करने से पूर्व मामले में जांच कराने के लिए बाध्य है । इसका अर्थ यह है कि पारस्परिक सहमति द्वारा विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित किए जाने के लिए संयुक्त याचिका आवश्यक होती है और पक्षकारों द्वारा द्वितीय समावेदन प्रथम समावेदन याचिका फाइल किए जाने के छह माह पश्चात् किंतु अठारह मास की समाप्ति से पूर्व फाइल किया जाना चाहिए और पक्षकार डिक्री के पारित होने से पूर्व किसी भी समय याचिका को वापस लेने के लिए स्वतंत्र होते हैं । डिक्री को याचिका के पक्षकारों की सत्यता और सद्भाविकता के संबंध में जांच किए जाने के पश्चात् पारित की जानी चाहिए । 1955 के हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 28 जो इस अधिनियम के अधीन पारित डिक्रियों और आदेशों के विरुद्ध अपील फाइल किए जाने की अनुमति प्रदान करती है, अपील फाइल किए जाने के विरुद्ध कोई निषेध अधिरोपित नहीं किया है, यहां तक कि सहमति के आधार पर प्रदान की गई डिक्री के विरुद्ध भी नहीं । इस धारा के अधीन अधिनियम के अंतर्गत फाइल की गई किसी भी कार्यवाही में न्यायालय द्वारा पारित सभी डिक्रियों के विरुद्ध अपील करने की अनुमति प्रदान की गई है, सिवाय उन डिक्रियों के जो लागत के अधिनिर्णय के संबंध में है । इस प्रकार, आवश्यक निहितार्थ यदि कोई सहमति या

समझौता के आधार पर भी कोई डिक्री पारित की जाती है, तो 1955 के हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा के अंतर्गत पारित अपील के लिए स्वतंत्र होते हैं । पूर्वोक्त तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, हमारा यह मत है कि मामले के ऐसे तथ्यों और परिस्थितियों में सहमति के आधार पर पारित डिक्री के विरुद्ध भी दूसरे पक्ष के उपस्थित होने पर फाइल किए गए आक्षेपों के अध्यधीन रहते हुए अपील पोषणीय होगी, जहां सहमति ही विवादित है और निचले न्यायालय द्वारा कोई जांच संचालित नहीं की गई है । इस प्रकार, हम अपील के विचारणार्थ मंजूर करते हैं और प्रत्यर्थी को रजिस्ट्रीकृत डाक/स्पीड पोस्ट द्वारा नोटिस जारी करने को निर्देशित करते हैं । (पैरा 15, 16, 17, 21 और 22)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2011]	(2011) 5 एस. सी. सी. 234 : **हितेश भटनागर** बनाम **दीपा भटनागर ;**	13
[2009]	2009 (81) ए. आई. सी. 599 (बम्बई उच्च न्यायालय, नागपुर खंडपीठ) : **सुषमा** बनाम **प्रमोद ;**	19, 20
[2006]	ए. आई. आर. 2006 पंजाब और हरियाणा 201 : **चरनजीत सिंह मान** बनाम **नीलम मान ;**	18
[1991]	(1991) 2 एस. सी. सी. 25 : **श्रीमती सुरेष्ठा देवी** बनाम **ओम प्रकाश ;**	14
[1987]	ए. आई. आर. 1987 पंजाब और हरियाणा 191 : **श्रीमती कृष्णा खेतरपाल** बनाम **सतीश लाल ।**	18

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2018 की प्रथम अपील सं. 227.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 96 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री शिव बहादुर सिंह, अंजनी कुमार दुबे

प्रत्यर्थी की ओर से कोई नहीं

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति पंकज मित्तल ने दिया ।

न्या. मित्तल – पत्नी ने यह अपील आगरा के कुटुंब न्यायालय द्वारा तारीख 11 जनवरी, 2018 को पारित आदेश द्वारा पक्षकारों की पारस्परिक सहमति से 1955 के हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13-ख के अधीन पारित विवाह के विघटन की डिक्री के विरुद्ध 1984 के कुटुंब न्यायालय अधिनियम की धारा 19 के साथ पठित 1955 के हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 28 के अधीन फाइल की है ।

2. अपीलार्थी-पत्नी की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल श्री अंजनी कुमार दुबे ने यह तर्क दिया कि पूर्वोक्त डिक्री बल के प्रयोग द्वारा याचिका पर अपीलार्थी-पत्नी के हस्ताक्षर कराकर कपट से प्राप्त की गई है । पत्नी पति के घर में परिरुद्ध थी और इस प्रकार उसके हस्ताक्षर ऐसे परिरोध का अनुचित लाभ उठाकर विवाह-विच्छेद पाने के लिए किया है । कुटुंब न्यायालय दूसरे समावेदन के बिना और वह भी प्रथम समावेदन से छह मास के समापन अवधि से पूर्व 1955 के हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13-ख के अधीन विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित नहीं कर सकता ।

3. स्थिरीकृत विधि यह है कि सहमति से पारित डिक्री को अपील के माध्यम से चुनौती नहीं दी जा सकती ।

4. अपील 1984 की कुटुंब न्यायालय अधिनियम की धारा 19 के अधीन फाइल की गई है जो विशिष्ट रूप से पक्षकारों की सहमति से पारित डिक्री के विरुद्ध किसी अपील को फाइल किए जाने से विनिर्दिष्ट रूप से निषेधित करती है ।

5. इस प्रकार विवादास्पद प्रश्न यह है कि क्या कोई अपील 1955 के हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13-ख के अधीन पारस्परिक सहमति से पारित डिक्री के विरुद्ध 1984 के कुटुंब न्यायालय अधिनियम की धारा 19 के अधीन अपील फाइल की जा सकती है ।

6. 1955 के हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13-ख के अधीन फाइल की गई याचिका की प्रमाणित प्रति के प्रत्येक पृष्ठ पर पत्नी और पति द्वारा संयुक्त रूप से हस्ताक्षर किए गए हैं और इसे पति और पत्नी दोनों के द्वारा सत्यापित किया गया है । उक्त याचिका के साथ उनका संयुक्त शपथपत्र संलग्न है जिसमें दोनों के प्रत्येक पृष्ठ पर हस्ताक्षर भी हैं ।

7. याचिका तारीख 11 जुलाई, 2017 को कुटुंब न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की गई है । याचिका के समर्थन में फाइल किया गया शपथपत्र

उसी तारीख का है ।

8. 1955 के हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13-ख के अधीन फाइल की गई याचिका छह मास पश्चात् अर्थात तारीख 11 जनवरी, 2018 को न्यायालय द्वारा विचार किए जाने के प्रयोजनार्थ प्रस्तुत की गई थी । उक्त तारीख को पति और पत्नी दोनों न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुए थे । इस बीच में न तो दोनों में से किसी पक्षकार ने याचिका वापस ली और न ही दोनों में से किसी ने मौखिक रूप से या कोई आवेदन फाइल करके विवाह-विच्छेद के लिए सहमति दी । वे फाइल किए गए अन्य संयुक्त शपथपत्र की पूर्ववर्ती तथ्यों के बारे में जानकारी लेने के लिए तारीख 11 जनवरी, 2018 को दूसरा अभ्यावेदन फाइल कर सकते थे कि उनके बीच मध्यस्थता असफल हो गई है । न्यायालय ने तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि पक्षकारों के बीच विवाह तारीख 30 मई, 2015 को संपन्न हुआ और वे विवाह से बिना किसी संतानोपत्ति के तारीख 15 मार्च, 2016 से पृथक् रूप से रह रहे थे, अपना समाधान अभिलिखित कराने के पश्चात् कि याचिका सद्भाविक है, दोनों पक्षों की पारस्परिक सहमति से विवाह के विघटन की डिक्री पारित कर दी ।

9. पारस्परिक सहमति द्वारा विवाह-विच्छेद की डिक्री तभी पारित की जा सकती है यदि 1955 के हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13-ख में अंतर्विष्ट समस्त आवश्यक संघटकों के प्रति न्यायालय का समाधान हो जाता है ।

10. हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13-ख को नीचे पुरस्थापित किया गया है :–

> "13-ख. **पारस्परिक सहमति से विवाह-विच्छेद** – (1) इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए या दोनों पक्षकार मिलकर विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा विवाह के विघटन के लिए अर्जी जिला न्यायालय में, चाहे ऐसा विवाह, विवाह विधि (संशोधन) अधिनियम, 1976 के प्रारंभ के पूर्व अनुष्ठापित किया गया हो चाहे उसके पश्चात् इस आधार पर पेश कर सकेंगे कि एक वर्ष या उससे अधिक समय से अलग रह रहे हैं और वे एक साथ नहीं रह सके हैं तथा वे इस बात के लिए परस्पर सहमत हो गए हैं कि विवाह विघटित कर देना चाहिए ।
>
> (2) उपधारा (1) में निर्दिष्ट अर्जी के उपस्थापित किए जाने

की तारीख से छह मास के पश्चात् और अठारह मास के भीतर दोनों पक्षकारों द्वारा किए गए प्रस्ताव पर, यदि इस बीच अर्जी वापस नहीं ली गई हो तो न्यायालय पक्षकारों को सुनने के पश्चात् और ऐसी जांच, जैसी वह ठीक समझे, करने के पश्चात् अपना यह समाधान कर लेने पर कि विवाह अनुष्ठापित हुआ है और अर्जी में किए गए प्रकथन सही हैं यह घोषणा करने वाली डिक्री पारित करेगा कि विवाह डिक्री की तारीख से विघटित हो जाएगा ।"

11. उपरोक्त उपबंध का प्रथम भाग विवाह के दोनों पक्षकारों द्वारा पारस्परिक सहमति से विवाह के विघटन के लिए याचिका प्रस्तुत किए जाने के लिए अनुध्यात करता है यदि वे एक वर्ष या उससे अधिक समय से पृथक् रूप से रह रहे हैं और वे विवाह के विघटन के लिए सहमत हो गए हैं । उपरोक्त उपबंध के द्वितीय भाग के दो उप भाग हैं । प्रथम उप भाग विवाह-विच्छेद याचिका फाइल किए जाने की तारीख से छह मास पूर्व और उक्त तारीख से 18 मास पश्चात् दोनों पक्षकारों द्वारा समावेदन फाइल किए जाने के लिए उपबंध नहीं करता । दूसरे शब्दों में, इसके छह मास की अवधि की समाप्ति के पश्चात् दोनों पक्षकारों द्वारा द्वितीय मोसन की शुरुआत परन्तु विवाह-विच्छेद की याचिका फाइल करने की तारीख से अठारह मास की समाप्ति से पूर्व विचार करते हैं ।

12. द्वितीय उप भाग अनुध्यात करता है कि यदि इस बीच अर्जी वापस नहीं ली गई हो तो न्यायालय पक्षकारों को और इस बाबत जांच करने के पश्चात् कि अर्जी में किए गए प्रकथन सही हैं, के पश्चात् विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित करने वाला आदेश पारित करेगा ।

13. **हितेश भटनागर** बनाम **दीपा भटनागर**[1] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि यदि द्वितीय समावेदन प्रथम समावेदन याचिका फाइल किए जाने के अठारह मास की अवधि के भीतर फाइल नहीं किया गया है, तो न्यायालय पारस्परिक सहमति द्वारा विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित करने लिए बाध्य नहीं है । पूर्वोक्त समय सीमा याचिका या सहमति को वापस लिए जाने के प्रयोजनार्थ नहीं है, फिर भी सहमति विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित किए जाने के पूर्व किसी भी समय वापस ली जा सकती है ।

---

[1] (2011) 5 एस. सी. सी. 234.

14. **श्रीमती सुरेष्ठा देवी** बनाम **ओम प्रकाश**[1] वाले मामले में यह अधिकथित किया गया है कि पारस्परिक सहमति द्वारा विवाह-विच्छेद प्रदान किए जाने के प्रयोजनार्थ पक्षकारों द्वारा फाइल किए गए संयुक्त समावेदन पर न्यायालय से यह अपेक्षा की जाती है कि वह इस बात को अभिनिश्चित करने के प्रयोजनार्थ कि विवाह-विच्छेद याचिका में किए गए प्रकथन सत्य हैं और पक्षकारों की सहमति बल, कपट या अनुचित दबाव द्वारा प्राप्त नहीं की गई है, मामले की जांच करेगा और दोनों पक्षों को सुनेगा और उनका परीक्षण करेगा ।

15. 1955 के हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 23(1)(खख) भी पारस्परिक सहमति द्वारा विवाह-विच्छेद के मामले में न्यायालयों पर यह बाध्यता अधिरोपित करती है कि सहमति बल, कपट या अनुचित दबाव द्वारा प्राप्त नहीं की गई है । अतः, न्यायालय पारस्परिक सहमति द्वारा विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित करने से पूर्व मामले में जांच कराने के लिए बाध्य है ।

16. इसका अर्थ यह है कि पारस्परिक सहमति द्वारा विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित किए जाने के लिए संयुक्त याचिका आवश्यक होती है और पक्षकारों द्वारा द्वितीय समावेदन प्रथम समावेदन याचिका फाइल किए जाने के छह माह पश्चात् किंतु अठारह मास की समाप्ति से पूर्व फाइल किया जाना चाहिए और पक्षकार डिक्री के पारित होने से पूर्व किसी भी समय याचिका को वापस लेने के लिए स्वतंत्र होते हैं । डिक्री को याचिका के पक्षकारों की सत्यता और सद्भाविकता के संबंध में जांच किए जाने के पश्चात् पारित की जानी चाहिए ।

17. 1955 के हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 28 जो इस अधिनियम के अधीन पारित डिक्रियों और आदेशों के विरुद्ध अपील फाइल किए जाने की अनुमति प्रदान करती है, अपील फाइल किए जाने के विरुद्ध कोई निषेध अधिरोपित नहीं किया है, यहां तक कि सहमति के आधार पर प्रदान की गई डिक्री के विरुद्ध भी नहीं । इस धारा के अधीन अधिनियम के अंतर्गत फाइल की गई किसी भी कार्यवाही में न्यायालय द्वारा पारित सभी डिक्रियों के विरुद्ध अपील करने की अनुमति प्रदान की गई है, सिवाय उन डिक्रियों के जो लागत के अधिनिर्णय के संबंध में है । इस प्रकार,

---

[1] (1991) 2 एस. सी. सी. 25.

आवश्यक निहितार्थ यदि कोई सहमति या समझौता के आधार पर भी कोई डिक्री पारित की जाती है, तो 1955 के हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा के अंतर्गत पारित अपील के लिए स्वतंत्र होते हैं ।

18. **श्रीमती कृष्णा खेतरपाल** बनाम **सतीश लाल**[1] और **चरनजीत सिंह मान** बनाम **नीलम मान**[2] वाले मामलों में भी पंजाब और हरियाणा द्वारा भी यही दृष्टिकोण व्यक्त किया है और यह अभिनिर्धारित किया गया है कि पारस्परिक सहमति के आधार पर पारित की गई विवाह-विच्छेद की डिक्री के विरुद्ध 1955 के हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 28 के अधीन अपील पोषणीय होती है ।

19. **सुषमा** बनाम **प्रमोद**[3] वाले मामले में बम्बई उच्च न्यायालय (नागपुर न्यायपीठ) के एकल न्यायाधीश ने जो अभिनिर्धारित किया है इस प्रकार है :–

> "11. विधान-मंडल ने न्यायालय पर धारा 13-बी के अधीन फाइल की गई कार्यवाहियों पर विचार करने और यह निष्कर्ष अभिलिखित करने की बाध्यता अधिरोपित की है कि विवाह-विच्छेद के लिए सहमति बल, कपट या अनुचित दबाव द्वारा प्राप्त न की गई हो । इस प्रकार विधायिका ने यह कल्पना की है कि ऐसे मामले भी हो सकते हैं जिनमें विवाह-विच्छेद के लिए सहमति प्राप्त की जा सकती है और दुरुपयोग के विरुद्ध रक्षोपाय उपबंधित करने का निर्णय लिया अतः न्यायालय पर यह बाध्यता अधिरोपित की गई है कि वह सहमति को सत्यापित कराए और इस बाबत समाधान अधिरोपित करे कि पक्षकारों द्वारा प्रदान की गई, सहमति और स्वतंत्र और स्वेच्छानुसार है । बल प्रयोग, कपट इत्यादि के प्रयोग द्वारा अभिप्राप्त पारस्परिक सहमति द्वारा विवाह-विच्छेद की डिक्री प्रदान किए जाने के प्रयोजनार्थ ऐसे किसी उपबंध के दुरुपयोग की परिकल्पना करते हुए इस बात को स्वीकार नहीं किया जा सकता है कि विधान-मंडल ने ऐसे मामलों में व्यथित पति-पत्नी को कोई अनुतोष उपलब्ध नहीं किया । यह अभिनिर्धारित किए जाने के प्रयोजनार्थ कि अपील का अनुतोष ऐसे

---

[1] ए. आई. आर. 1987 पंजाब और हरियाणा 191.

[2] ए. आई. आर. 2006 पंजाब और हरियाणा 201.

[3] 2009 (81) ए. आई. सी. 599 (बम्बई उच्च न्यायालय, नागपुर खंडपीठ).

किसी व्यथित पति-पत्नी को उपलब्ध नहीं होता है, विधान-मंडल द्वारा विचारण न्यायालय पर अधिरोपित बाध्यता के प्रयोग को बना देगा । अतः मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचता हूं कि पारस्परिक सहमति के आधार पर अभिप्राप्त ऐसी किसी विवाह-विच्छेद की डिक्री के विरुद्ध अपील की तर्कसंगतता के बारे में अधिवक्ता श्री डे द्वारा दिए गए तर्क अस्वीकृत किए जाने योग्य हैं ।"

20. उपरोक्त बलों को ध्यान में रखते हुए, साधारणतया सहमति पर आधारित डिक्री या आदेश का अपील के द्वारा चुनौती नहीं दी जा सकती है परन्तु जहां सहमति ही विवादास्पद है और इसे वास्तविक, सद्भाविक या स्वतंत्र नहीं कहा जा रहा, वहां परिस्थितियां काफी भिन्न होंगी जैसाकि बम्बई उच्च न्यायालय द्वारा **सुषमा** बनाम **प्रमोद**[1] वाले मामले में पारित विनिश्चय में उल्लेख किया गया है और न्यायालय का यह पवित्र कर्तव्य हो जाता है कि वह विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित करने के लिए अग्रसर होने के पूर्व इस संबंध में जांच करे । वर्तमान मामले में निचले न्यायालय द्वारा यह किया गया है और उसने इसमें ऐसी किसी जांच को संचालित किए बिना अपना समाधान अभिलिखित कर दिया है ।

21. पूर्वोक्त तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, हमारा यह मत है कि मामले के ऐसे तथ्यों और परिस्थितियों में सहमति के आधार पर पारित डिक्री के विरुद्ध भी दूसरे पक्ष के उपस्थित होने पर फाइल किए गए आक्षेपों के अध्यधीन रहते हुए अपील पोषणीय होगी, जहां सहमति ही विवादित है और निचले न्यायालय द्वारा कोई जांच संचालित नहीं की गई है ।

22. इस प्रकार, हम अपील को विचारणार्थ मंजूर करते हैं और प्रत्यर्थी को रजिस्ट्रीकृत डाक/स्पीड पोस्ट द्वारा नोटिस जारी करने को निर्देशित करते हैं ।

23. प्रत्यर्थी को रजिस्ट्रीकृत डाक/स्पीड पोस्ट द्वारा नोटिस जारी किया जाए ।

24. मामले को नोटिस की तामीली वापसी पर सूचीबद्ध किया जाए ।

अपील मंजूर की गई ।

मही./अवि.

---

[1] 2009 (81) ए. आई. सी. 599 (बम्बई उच्च न्यायालय, नागपुर खंडपीठ).

राधाकृष्णन सी.

बनाम

मुख्य प्रबंधक, स्टेट बैंक आफ इंडिया और एक अन्य

तारीख़ 4 अक्तूबर, 2017

न्यायमूर्ति पी. बी. सुरेश कुमार

संविदा अधिनियम, 1872 (1872 का 9) – धारा 171 [सपठित पेंशन अधिनियम, 1871 की धारा 11] – कर्मचारी का पेंशन खाता – खातेदार द्वारा बैंक से कार ऋण लिया जाना – कार ऋण की अदायगी में विफ़लता – बैंक द्वारा कार ऋण की पेंशन खाते से मुजराई – ऋण अंतिम रूप से मुजरा होने तक खाते के संचालन पर रोक – न्यायोचित्य – चूंकि खाता अनन्य रूप से पेंशन का संवितरण करने के लिए खोला जाता है और ऐसा खाता बैंक के सामान्य कारबार के अन्तर्गत नहीं आता है – अतः बैंक पेंशन खाते के अपने ग्रहणाधिकार का प्रयोग करके ऐसी मुजराई नहीं कर सकता – बैंक ऐसे खाते के संचालन को विवर्जित नहीं कर सकता ।

याची जो बी. एस. एन. एल. का पूर्व कर्मचारी है, अधिवर्षिता प्राप्त करने के पश्चात् स्टेट बैंक आफ इंडिया (जिसे आगे संक्षेप में 'बैंक' कहा गया है) पुथुपल्ली शाखा से उक्त प्रयोजन के लिए अनन्य रूप से खोले गए बचत बैंक खाते द्वारा पेंशन प्राप्त कर रहा है । याची ने पूर्व में कार क्रय करने के प्रयोजन के लिए बैंक से सावधि ऋण लिया था और चूंकि उक्त सावधि ऋण की किस्तें जमा नहीं की गईं इसलिए बैंक ने कार के विरुद्ध कार्यवाही की और चूंकि कार के आगम दायित्व को पूरा करने के लिए पर्याप्त नहीं थे इसलिए बैंक द्वारा याची से शेष धनराशि की वसूली के लिए एक डिक्री प्राप्त की गई थी । यह कहा गया है कि उक्त डिक्री के निष्पादन के लिए बैंक द्वारा संस्थित कार्यवाहियां लंबित हैं । अतः बैंक ने याची को यह सूचित करने के लिए सूचना प्रदर्श पी-4 जारी की कि डिक्री के निबंधनों में याची द्वारा बैंक को 2 लाख 96 हजार 118 रुपए देय हैं और चूंकि याची ने उक्त धनराशि जमा नहीं की है इसलिए बैंक ने यह विनिश्चय किया है कि याची के उक्त दायित्व के विरुद्ध देय शेष धनराशि और भावी धनराशियां उसके पेंशन खाते में से मुजराई की जाएं । उक्त

सूचना के अनुसार याची को यह भी सूचित किया गया था कि यदि दायित्वों को पूरा नहीं किया जाता है तब उस परिस्थिति में याची को पेंशन खाते का संचालन अनुज्ञात नहीं किया जाएगा । यह कहा गया है कि याची ने सूचना प्रदर्श पी-4 के जवाब में बैंक को यह सूचित करते हुए सूचना भेजी कि चूंकि सूचना प्रदर्श पी-4 में निर्दिष्ट खाता उसका पेंशन खाता है इसलिए बैंक को शेष धनराशि और भावी धनराशियों का उसके उक्त खाते से मुजराई करने का कोई अधिकार नहीं है । बैंक ने उक्त उत्तर प्राप्त होने पर याची को यह सूचित करते हुए संसूचना प्रदर्श पी-5 जारी की कि बैंक को अपने सामान्य ग्रहणाधिकार का प्रयोग करते हुए उक्त शेष धनराशि उसके पेंशन खाते से मुजराई करने का हकदार है । बैंक द्वारा याची को यह सूचित करने वाली सूचना प्रदर्श पी-4 में यह कहा गया था कि याची को अपने पेंशन खाते का संचालन करने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जाएगा और इन परिस्थितियों में इसे इस रिट याचिका द्वारा आक्षेपित किया गया है । रिट याचिका मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – यह दोहराया जा सकता है कि पेंशन अधिक आयु पर भरणपोषण के लिए सामाजिक सुरक्षा अध्युपाय के रूप में मंजूर की जाती है । सामाजिक सुरक्षा को संयुक्त राष्ट्रों के सभी बड़े मानव अधिकार उपायों के रूप में घोषित किया गया है । हितकारी लक्षण जो अन्तर्राष्ट्रीय प्रसंविदाओं का भाग गठित करते हैं और मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा में सम्मिलित हैं, हमारी सांविधानिक स्कीम के मुख्य आधार हैं । अतः पेंशन प्राप्त करने के लिए अधिकारों को सांविधानिक स्कीम के अधीन मान्यता देते हुए नागरिकों के मूल अधिकारों के अभिन्न भाग के रूप में मंजूर किया गया है । विवाद्यक पर उपर्युक्त पृष्ठभूमि में विचार किए जाने की आवश्यकता है । यह तथ्य विवादित नहीं है कि सूचना प्रदर्श पी-4 में यथानिर्दिष्ट बैंक में याची का खाता एक ऐसा खाता है जो याची द्वारा अनन्य रूप से इसलिए खोला गया था जिससे कि उसके पूर्व नियोजक द्वारा उसको संदेय पेंशन का संवितरण किया जा सके । व्यापारिक रूढ़ियों के अनुसार बैंकों को सभी प्रकार की प्रतिभूतियों के ऊपर सामान्य ग्रहणाधिकार है अथवा व्यक्तियों द्वारा जमा की गई परक्राम्य लिखतों पर अथवा बैंकों के सामान्य अनुक्रम में किए गए कारबार में उसके ग्राहकों की ओर से जमा की गई परक्राम्य लिखतों पर सामान्य ग्रहणाधिकार है इसलिए ऐसे ग्रहणाधिकार को न्याय प्रणाली द्वारा बैंकों को उपलब्ध मूल्यवान अधिकार के रूप में माना गया है । इसके प्रतिकूल बैंक किसी करार के

अभाव में प्रतिभूतियों के ऊपर या ग्राहकों के ऊपर संदेय धनराशियों की वसूली के लिए बैंक कारबार के सामान्य अनुक्रम में प्राप्त बिलों पर उक्त अधिकार का प्रयोग करने के लिए हकदार है । जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है कि बैंक ग्राहक को पेंशन खाता खोलने के लिए अनुज्ञात करके केवल ग्राहक के लिए उसके नियोजकों द्वारा मंजूर की गई पेंशन के संवितरण की सुविधा भी प्रदान करती है । ऐसे खातों में प्राप्त धनराशियों के बारे में यह नहीं माना जा सकता कि वे ऐसी धनराशियां हैं जो बैंक द्वारा बैंक कारबार के सामान्य अनुक्रम में अपने ग्राहकों की ओर से प्राप्त की गई हैं । इसके अतिरिक्त इस तथ्य के आधार पर कि खाता अनन्य रूप से ग्राहक की पेंशन के संवितरण के लिए खोला गया है, बैंक और ग्राहक के नियोजक के बीच इस आशय का विवक्षित करार भी सम्मिलित है कि खाते में जमा की गई धनराशि का ग्राहक को ही संवितरण किया जाएगा । अतः बैंक ग्राहक के पेंशन खाते में जमा करने के लिए उपलब्ध धनराशियों पर सामान्य ग्रहणाधिकार का प्रयोग नहीं कर सकता । (पैरा 6, 7 और 9)

अनुसरित निर्णय

		पैरा
[2009]	ए. आई. आर. 2009 एस. सी. 930 = (2009) 1 एस. सी. सी. 376 : **राधेश्याम गुप्ता** बनाम **पंजाब नेशनल बैंक;**	8
[1992]	ए. आई. आर. 1992 एस. सी. 1066 = (1992) 2 एस. सी. सी. 330 : **सिडिंकेट बैंक** बनाम **विजय कुमार** ।	7

आरंभिक (सिविल) रिट अधिकारिता : 2017 की रिट याचिका (सिविल) सं. 20685.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन सिविल रिट याचिका ।

याची की ओर से — सर्वश्री जी. श्रीकुमार (चयलूर) और नंद गोपाल एस. कुरूप

प्रत्यर्थियों की ओर से — सर्वश्री टी. सेथू माधवन और के. जयेश मोहन कुमार के.

न्यायमूर्ति पी. बी. सुरेश कुमार – याची जो बी. एस. एन. एल. का पूर्व कर्मचारी है, अधिवर्षिता प्राप्त करने के पश्चात् स्टेट बैंक आफ इंडिया (जिसे आगे संक्षेप में 'बैंक' कहा गया है) पुथुपल्ली शाखा से उक्त प्रयोजन के लिए अनन्य रूप से खोले गए बचत बैंक खाते द्वारा पेंशन प्राप्त कर रहा है । याची ने पूर्व में कार क्रय करने के प्रयोजन के लिए बैंक से सावधि ऋण लिया था और चूंकि उक्त सावधि ऋण की किस्तें जमा नहीं की गईं इसलिए बैंक ने कार के विरुद्ध कार्यवाही की और चूंकि कार के आगम दायित्व को पूरा करने के लिए पर्याप्त नहीं थे इसलिए बैंक द्वारा याची से शेष धनराशि की वसूली के लिए एक डिक्री प्राप्त की गई थी । यह कहा गया है कि उक्त डिक्री के निष्पादन के लिए बैंक द्वारा संस्थित कार्यवाहियां लंबित हैं । अतः बैंक ने याची को यह सूचित करने के लिए सूचना प्रदर्श पी-4 जारी की कि डिक्री के निबंधनों में याची द्वारा बैंक को 2 लाख 96 हजार 118 रुपए देय हैं और चूंकि याची ने उक्त धनराशि जमा नहीं की है इसलिए बैंक ने यह विनिश्चय किया है कि याची के उक्त दायित्व के विरुद्ध देय शेष धनराशि और भावी धनराशियां उसके पेंशन खाते में से मुजराई की जाएं । उक्त सूचना के अनुसार याची को यह भी सूचित किया गया था कि यदि दायित्वों को पूरा नहीं किया जाता है तब उस परिस्थिति में याची को पेंशन खाते का संचालन अनुज्ञात नहीं किया जाएगा । यह कहा गया है कि याची ने सूचना प्रदर्श पी-4 के जवाब में बैंक को यह सूचित करते हुए सूचना भेजी कि चूंकि सूचना प्रदर्श पी-4 में निर्दिष्ट खाता उसका पेंशन खाता है इसलिए बैंक को शेष धनराशि और भावी धनराशियों का उसके उक्त खाते से मुजराई करने का कोई अधिकार नहीं है । बैंक ने उक्त उत्तर प्राप्त होने पर याची को यह सूचित करते हुए संसूचना प्रदर्श पी-5 जारी की कि बैंक अपने सामान्य ग्रहणाधिकार का प्रयोग करते हुए उक्त शेष धनराशि उसके पेंशन खाते से मुजराई करने का हकदार है । बैंक द्वारा याची को यह सूचित करने वाली सूचना प्रदर्श पी-4 में यह कहा गया था कि याची को अपने पेंशन खाते का संचालन करने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जाएगा और इन परिस्थितियों में इसे इस रिट याचिका द्वारा आक्षेपित किया गया है ।

2. बैंक ने सूचना प्रदर्श पी-4 और संसूचना प्रदर्श पी-5 में किए गए कथनों को न्यायोचित ठहराते हुए रिट याचिका (सिविल) सं. 20685/2017-I.3 में कथन फाइल किया ।

3. याची के विद्वान् काउंसेल और बैंक के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल को सुना गया ।

4. बैंक के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने यह दलील दी कि बैंक का सामान्य ग्रहणाधिकार उन धनराशियों पर भी लागू होता है जो याची पर बकाया हैं और इसलिए यह ग्रहणाधिकार उसके पेंशन खाते पर भी लागू होता है और इसलिए बैंक द्वारा सूचना प्रदर्श पी-4 और संसूचना प्रदर्श पी-5 में लिया गया आधार उचित है ।

5. विचारार्थ संक्षिप्त प्रश्न यह उद्भूत होता है कि क्या बैंक, बैंक द्वारा अपने ग्राहकों की ओर से उनको पेंशन के संवितरण में प्राप्त धनराशियों के ऊपर अपने सामान्य ग्रहणाधिकार का प्रयोग करने के लिए हकदार है ।

6. यह दोहराया जा सकता है कि पेंशन अधिक आयु पर भरणपोषण के लिए सामाजिक सुरक्षा अध्युपाय के रूप में मंजूर की जाती है । सामाजिक सुरक्षा को संयुक्त राष्ट्रों के सभी बड़े मानव अधिकार उपायों के रूप में घोषित किया गया है । हितकारी लक्षण जो अन्तर्राष्ट्रीय प्रसंविदाओं का भाग गठित करते हैं और मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा में सम्मिलित हैं, हमारी सांविधानिक स्कीम के मुख्य आधार हैं । अतः पेंशन प्राप्त करने के लिए अधिकारों को सांविधानिक स्कीम के अधीन मान्यता देते हुए नागरिकों के मूल अधिकारों के अभिन्न भाग के रूप में मंजूर किया गया है । विवाद्यक पर उपर्युक्त पृष्ठभूमि में विचार किए जाने की आवश्यकता है ।

7. यह तथ्य विवादित नहीं है कि सूचना प्रदर्श पी-4 में यथानिर्दिष्ट बैंक में याची का खाता एक ऐसा खाता है जो याची द्वारा अनन्य रूप से इसलिए खोला गया था जिससे कि उसके पूर्व नियोजक द्वारा उसको संदेय पेंशन का संवितरण किया जा सके । व्यापारिक रूढ़ियों के अनुसार बैंकों को सभी प्रकार की प्रतिभूतियों के ऊपर सामान्य ग्रहणाधिकार है अथवा व्यक्तियों द्वारा जमा की गई परक्राम्य लिखतों पर अथवा बैंकों के सामान्य अनुक्रम में किए गए कारबार में उसके ग्राहकों की ओर से जमा की गई परक्राम्य लिखतों पर सामान्य ग्रहणाधिकार है इसलिए ऐसे ग्रहणाधिकार को न्याय प्रणाली द्वारा बैंकों को उपलब्ध मूल्यवान अधिकार के रूप में माना गया है । बैंक इसके प्रतिकूल किसी करार के अभाव में प्रतिभूतियों के ऊपर या ग्राहकों के ऊपर संदेय धनराशियों की वसूली के लिए बैंक कारबार

के सामान्य अनुक्रम में प्राप्त बिलों पर उक्त अधिकार का प्रयोग करने के लिए हकदार है । [**सिंडिकेट बैंक** बनाम **विजय कुमार**[1] वाला मामला देखिए] प्रश्न यह है कि क्या बैंक द्वारा उक्त अधिकार का प्रयोग उसके ग्राहकों के संवितरण के लिए बैंक द्वारा प्राप्त पेंशन धनराशियों के ऊपर किया जा सकता है ।

8. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है कि याची द्वारा बैंक में उक्त खाता अनन्य रूप से अपनी पेंशन प्राप्त करने के प्रयोजन के लिए उसके पूर्वतर नियोजक द्वारा पेंशन संवितरण के लिए विहित सन्नियमों के अनुसार खोला गया था और उक्त खाते में कोई अन्य संव्यवहार अनुज्ञात नहीं है । अतः बैंक द्वारा याची की ओर से प्राप्त धनराशियों की प्रकृति और खाते में सतत रूप से जमा की गई धनराशि पेंशन ही होगी । [**राधेश्याम गुप्ता** बनाम **पंजाब नेशनल बैंक**[2] वाला मामला देखिए] जहां ऐसा है वहां पेंशन अधिनियम, 1871 की धारा 11 में उल्लिखित उपबंधों को दृष्टिगत करते हुए बैंक स्वयं द्वारा प्राप्त की गई डिक्री के अन्तर्गत आने वाली धनराशियों की वसूली के लिए उक्त धनराशि के विरुद्ध कार्यवाही करने से विवर्जित है । यदि बैंक पेंशन अधिनियम, 1871 में उल्लिखित उपबंधों के कारण डिक्री के अन्तर्गत आने वाली धनराशियों की वसूली के लिए उक्त धनराशि के विरुद्ध कार्यवाही करने से विवर्जित है तो निश्चित रूप से वह उक्त धनराशि के ऊपर अपने सामान्य ग्रहणाधिकार का प्रयोग करने से भी विवर्जित होना चाहिए और यदि बैंक को ऐसे खातों में जमा धनराशियों के ऊपर सामान्य ग्रहणाधिकार का प्रयोग करने के लिए अनुज्ञात किया जाता है तो इससे पेंशन अधिनियम, 1871 की धारा 11 का संपूर्ण प्रयोजन ही विफल हो जाएगा । इसके अतिरिक्त जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है कि बैंक द्वारा सामान्य ग्रहणाधिकार का प्रयोग केवल प्रतिभूतियों के ऊपर और ग्राहकों द्वारा बैंक के सामान्य कारबार के अनुक्रम में जमा किए गए परक्राम्य लिखतों या किस्तों के ऊपर ही किया जा सकता है और वह भी इसके प्रतिकूल किसी करार के अभाव में ।

9. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है कि बैंक ग्राहक को पेंशन खाता खोलने के लिए अनुज्ञात करके केवल ग्राहक के लिए उसके

---

[1] ए. आई. आर. 1992 एस. सी. 1066 = (1992) 2 एस. सी. सी. 330.

[2] ए. आई. आर. 2009 एस. सी. 930 = (2009) 1 एस. सी. सी. 376.

नियोजकों द्वारा मंजूर की गई पेंशन के संवितरण की सुविधा भी प्रदान करती है । ऐसे खातों में प्राप्त धनराशियों के बारे में यह नहीं माना जा सकता कि वे ऐसी धनराशियां हैं जो बैंक द्वारा बैंक कारबार के सामान्य अनुक्रम में अपने ग्राहकों की ओर से प्राप्त की गई हैं । इसके अतिरिक्त इस तथ्य के आधार पर कि खाता अनन्य रूप से ग्राहक की पेंशन के संवितरण के लिए खोला गया है, बैंक और ग्राहक के नियोजक के बीच इस आशय का विवक्षित करार भी सम्मिलित है कि खाते में जमा की गई धनराशि का ग्राहक को ही संवितरण किया जाएगा । अतः बैंक ग्राहक के पेंशन खाते में जमा करने के लिए उपलब्ध धनराशियों पर सामान्य ग्रहणाधिकार का प्रयोग नहीं कर सकता ।

10. इन परिस्थितियों में रिट याचिका मंजूर की जाती है । सूचना प्रदर्श पी-4 अभिखंडित की जाती है और प्रत्यर्थियों को यह निदेश दिया जाता है कि वे याची को पेंशन खाते का संचालन करने के लिए और उक्त खाते में जमा की गई धनराशियों का आहरण करने के लिए अनुज्ञात करें ।

रिट याचिका मंजूर की गई ।

मह.

आयशा

बनाम

निदेशक, मुद्रण निदेशालय, तिरुअनन्तपुरम

तारीख 15 जनवरी, 2018

न्यायमूर्ति ए. मोहम्मद मुश्ताक

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 25 – धार्मिक स्वतंत्रता – हिन्दू धर्म से इस्लाम में संपरिवर्तन – सरकारी अभिलेखों में परिवर्तन के लिए आवेदन – मुद्रण निदेशक द्वारा अधिसूचना के लिए मान्यताप्राप्त संस्था से संपरिवर्तन प्रमाणपत्र मांगा जाना – विधिमान्यता – संविधान के अधीन गारंटीकृत धर्म को मानने की स्वतंत्रता का अधिकार किसी निर्बंधन के अध्यधीन नहीं है – अतः प्राधिकारी द्वारा ऐसा प्रमाणपत्र मांगा जाना धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार का अतिक्रमण है – सरकारी अभिलेखों में परिवर्तन के लिए नाम और धर्म के परिवर्तन की घोषणा ही परिवर्तन के लिए पर्याप्त है ।

याची 'आयशा' पूर्व में 'देवकी' नाम से जानी जाती थी । उसके विद्यालय अभिलेखों से यह उपदर्शित होता है कि वह हिन्दू धर्म को मानती थी । उसका पुत्र आयुर्विज्ञान चिकित्सक है जिसने अपना धर्म इस्लाम के रूप में संपरिवर्तित कर लिया है । याची ने अपने पुत्र का रास्ता अपनाया और उसने भी इस्लाम में अपना धर्म संपरिवर्तित कर लिया । उसने अपने नाम और धर्म को संपरिवर्तित कराने के लिए सरकारी अधिसूचना का आश्रय लिया । ऐसा प्रतीत होता है कि ऐसा राज्य सरकार के मुद्रण निदेशालय द्वारा किया जाना है । मुद्रण निदेशालय के निदेशक ने कार्यवाहियां प्रदर्श पी-6 द्वारा यह उल्लेख करते हुए आवेदन वापस कर दिया कि याची किसी मान्यताप्राप्त संस्था/संगठन द्वारा जारी यह घोषित करने वाला एक प्रमाणपत्र प्रस्तुत करे कि याची ने इस्लाम संप्रदाय में अपना धर्म संपरिवर्तन कर लिया है । जैसा कि सरकारी आदेश प्रदर्श पी-7 (ग) और (घ) से स्पष्ट है कि सरकार ने राज्य में इस्लाम संप्रदाय में संपरिवर्तन का प्रमाणपत्र जारी करने के लिए दो संगठनों को प्राधिकृत किया था । ये संगठन मौनाथुल इस्लाम एसोसिएशन, पोन्नानी, मलापपुरम और तरबियतुल इस्लाम सभा, कोजीखोड़ हैं । इस रिट याचिका में मुद्रण

निदेशक द्वारा आवेदन वापस करने के विनिश्चय को आक्षेपित करने के साथ-साथ उपर्युक्त सरकारी आदेशों को भी आक्षेपित किया गया है । रिट याचिका का तद्नुसार निपटान करते हुए,

अभिनिर्धारित – किसी धर्म को मानने या उस पर व्यवहार करने का अधिकार एक मूल अधिकार है । किसी भी व्यक्ति को अपना स्वयं का धर्म चुनने की स्वतंत्रता है । अंतःकरण और व्यवहार की स्वतंत्रता जैसा कि संविधान के अधीन उल्लेख किया गया है, मात्र एक सांविधानिक अधिकार की घोषणा नहीं है अपितु ऐसे अधिकार की घोषणा भी है जो पहले से ही समाज में विद्यमान है । किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता अति प्राचीन काल से एक मौलिक अधिकार है । संविधान ने ऐसे विद्यमान अधिकार की घोषणा संविधान के अनुच्छेद 25 द्वारा की है । अत: सरकार किसी व्यक्ति के धर्म या अंतःकरण के परिवर्तन के बारे में घोषणा के संबंध में कार्रवाई करेगी । ऐसे विनिश्चय की परिपक्वता को किसी प्राधिकारी द्वारा किसी परीक्षा के अध्यधीन नहीं रखा जा सकता । यदि सरकार ऐसे किसी दावे की सत्यता के बारे में संदेह करती है तो सरकार ऐसी घोषणा की सत्यता की जांच करा सकती है । निस्संदेह सरकारी अभिलेखों में परिवर्तन कराने के प्रयोजन के लिए और किसी प्रक्रिया को व्यवहार में लाने के लिए सरकार कतिपय साक्ष्य की अपेक्षा कर सकती है । तथापि, इसका यह अर्थ नहीं है कि किसी संपरिवर्तन को प्रभावी करने के लिए सरकार ऐसे किसी प्रमाणपत्र को प्रस्तुत करने के लिए बल दे सकती हो जो ऐसे किसी प्राधिकारी या संगठन द्वारा जारी किया गया हो जिसे ऐसा प्रमाणपत्र जारी करने के लिए अनन्य शक्ति दी गई है । व्यवहार करने के अधिकार पर ऐसा कोई निर्बंधन नहीं लगाया जा सकता कि प्रमाणपत्र किसी संगठन या किसी संस्था द्वारा जारी किया जाए । धर्म को मानने की स्वतंत्रता का यह अर्थ है कि इसे मानने में कोई रूकावट न हो । यदि सरकारी आदेश को इसी प्रकार से क्रियान्वित किया जाता है तो कोई व्यक्ति जो अपना धर्म संपरिवर्तित करता है, धर्म संपरिवर्तन की अपनी प्रास्थिति को घोषित करने के लिए ऐसे संगठन की दया पर निर्भर होगा । सरकार किसी व्यक्ति को इस बात के लिए बाध्य नहीं कर सकती कि वह अपने धर्म के संपरिवर्तन की पुष्टि करे और वह भी केवल किसी विशिष्ट रीति से और प्राधिकृत संगठन द्वारा जारी प्रमाणपत्र द्वारा । धर्म को मानने की स्वतंत्रता जिसे संविधान के अधीन गारंटीकृत किया गया है, किसी अर्हता द्वारा

निर्बंधित नहीं है । धर्म की शक्ति ऐसी चीज है जिस पर कोई व्यक्ति अन्तर्निहित रूप से अपनी मान्यता रखता है । धर्म को संपरिवर्तित करने की घोषणा मात्र सरकार के लिए सरकारी अभिलेखों में ऐसे संपरिवर्तन को प्रभावी करने के लिए कार्रवाई करने के लिए पर्याप्त होगी । जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है कि यदि सरकार को ऐसी घोषणा की सत्यता के बारे में संदेह होता है तो सरकार राजस्व कर्मचारी यथा तहसीलदार द्वारा जांच करा सकती है । यदि सरकार इस बात पर बल देती है कि किसी व्यक्ति द्वारा परिवर्तन प्रभावी करने के लिए राज्य द्वारा प्राधिकृत संगठन द्वारा जारी ऐसा प्रमाणपत्र पेश करने की आवश्यकता है तो निश्चित रूप से यह संविधान द्वारा ऐसे व्यक्तियों को गारंटीकृत स्वतंत्रता पर अंकुश लगाने के बराबर होगा । धर्म को मानने के अधिकार में ऐसा अधिकार भी सम्मिलित है जिसे विश्वास या धर्म कहा जाएगा । यद्यपि सरकारी आदेश को भी आक्षेपित किया गया है तथापि, यह न्यायालय इस अर्थ में आदेश में हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं समझता कि सरकार को किसी नागरिक द्वारा अपनी प्रास्थिति की घोषणा के लिए कोई अनुरोध करने पर कार्रवाई करने के लिए ऐसे प्राधिकारी को अनन्य अधिकार नहीं दिया जा सकता । सरकार द्वारा जारी सरकारी आदेश में निदेश को केवल निदेशात्मक रूप में ही माना जा सकता है न कि आज्ञापक रूप में । इस रिट याचिका को यह अभिनिर्धारित करते हुए निपटाया जाता है कि सरकार किसी नागरिक द्वारा अपने धर्म को संपरिवर्तित करने और अपने नाम को संपरिवर्तित करने की घोषणा के लिए कोई अनुरोध करने पर कार्रवाई करने के लिए किसी प्राधिकृत संस्था से कोई प्रमाणपत्र प्रस्तुत करने के लिए आज्ञापक अपेक्षा के रूप में बल नहीं दे सकती । सरकार कर्मचारियों द्वारा ऐसी घोषणा के बारे में जांच, यदि वह चाहती है, करा सकती है । सरकारी आदेशों के संबंध में आक्षेप यह अभिनिर्धारित करते हुए ऊपर उल्लिखित कारणों से निरस्त किया जाता है कि सरकारी आदेश किसी भी प्रकार से किसी नागरिक को अपना धर्म और नाम परिवर्तित करने की घोषणा के लिए बाधक नहीं होगा और सरकार ऐसी किसी घोषणा पर कार्रवाई करेगी । (पैरा 5, 6, 7 और 8)

आरंभिक (सिविल) रिट अधिकारिता : 2009 की रिट याचिका (सिविल) सं. 16515.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन सिविल रिट याचिका ।

याची की ओर से	सर्वश्री पी. के. इब्राहिम, श्रीमती के. पी. अम्बिका, सी. एन. गोपा कुमार और वी. एस. शाकिर जमीर
प्रत्यर्थियों की ओर से	श्रीमती प्रिया शानावास, सरकारी अभिवक्ता

न्यायमूर्ति ए. मोहम्मद मुश्ताक – इस रिट याचिका में धर्म को मानने से संबंधित स्वतंत्रता के संबंध में एक महत्वपूर्ण प्रश्न उद्भूत हुआ है । प्रश्न यह उद्भूत हुआ है कि "क्या किसी व्यक्ति द्वारा सरकारी अभिलेखों में परिवर्तन कराने हेतु यह घोषित करने के लिए किसी संस्था से कोई प्रमाणपत्र प्राप्त करना आवश्यक है या नहीं कि वह दूसरे धर्म में संपरिवर्तित हो गया है या हो गई है ?"

2. याची 'आयशा' पूर्व में 'देवकी' नाम से जानी जाती थी । उसके विद्यालय अभिलेखों से यह उपदर्शित होता है कि वह हिन्दू धर्म को मानती थी । उसका पुत्र आयुर्विज्ञान चिकित्सक है जिसने अपना धर्म इस्लाम के रूप में संपरिवर्तित कर लिया है । याची ने अपने पुत्र का रास्ता अपनाया और उसने भी इस्लाम में अपना धर्म संपरिवर्तित कर लिया । उसने अपने नाम और धर्म को संपरिवर्तित कराने के लिए सरकारी अधिसूचना का आश्रय लिया । ऐसा प्रतीत होता है कि ऐसा राज्य सरकार के मुद्रण निदेशालय द्वारा किया जाना है । मुद्रण निदेशालय के निदेशक ने कार्यवाहियां प्रदर्श पी-6 द्वारा यह उल्लेख करते हुए आवेदन वापस कर दिया कि याची किसी मान्यताप्राप्त संस्था/संगठन द्वारा जारी यह घोषित करने वाला एक प्रमाणपत्र प्रस्तुत करे कि याची ने इस्लाम संप्रदाय में अपना धर्म संपरिवर्तन कर लिया है । जैसा कि सरकारी आदेश प्रदर्श पी-7 (ग) और (घ) से स्पष्ट है कि सरकार ने राज्य में इस्लाम संप्रदाय में संपरिवर्तन का प्रमाणपत्र जारी करने के लिए दो संगठनों को प्राधिकृत किया था । ये संगठन मौनाथुल इस्लाम एसोसिएशन, पोन्नानी, मलापपुरम और तरबियतुल इस्लाम सभा, कोजीखोड़ हैं ।

3. इस रिट याचिका में मुद्रण निदेशक द्वारा आवेदन वापस करने के विनिश्चय को आक्षेपित करने के साथ-साथ उपर्युक्त सरकारी आदेशों को भी आक्षेपित किया गया है ।

4. सरकार ने इस तथ्य का उल्लेख करते हुए तारीख 30 अक्तूबर, 2004 को आदेश प्रदर्श पी-7 (ग) जारी किया था कि सरकार ने पहले ही

ऐसे मामलों में संपरिवर्तन प्रमाणपत्र जारी करने के लिए कतिपय संगठनों को प्राधिकृत करते हुए आदेश जारी कर दिए थे जिन्होंने हिन्दू संप्रदाय से संपरिवर्तन कर लिया है और यह पाया कि इस्लाम संप्रदाय में संपरिवर्तन करने के लिए कतिपय दिशानिर्देश जारी किया जाना आवश्यक है । उपर्युक्त सरकारी आदेश द्वारा ऐसे संगठनों को संपरिवर्तन का प्रमाणपत्र जारी करने के लिए अनन्य अधिकार दिया गया है । प्रश्न यह है कि क्या सरकार इस बात पर बल दे सकती है कि एक धर्म से दूसरे धर्म में संपरिवर्तन के लिए या ऐसे संपरिवर्तन के अनुसरण में नाम परिवर्तित करने के प्रयोजन के लिए ऐसा प्रमाणपत्र प्रस्तुत किया जाए ?

5. किसी धर्म को मानने या उस पर व्यवहार करने का अधिकार एक मूल अधिकार है । किसी भी व्यक्ति को अपना स्वयं का धर्म चुनने की स्वतंत्रता है । अंतःकरण और व्यवहार की स्वतंत्रता जैसा कि संविधान के अधीन उल्लेख किया गया है, मात्र एक सांविधानिक अधिकार की घोषणा नहीं है अपितु ऐसे अधिकार की घोषणा भी है जो पहले से ही समाज में विद्यमान है । किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता अति प्राचीन काल से एक मौलिक अधिकार है । संविधान ने ऐसे विद्यमान अधिकार की घोषणा संविधान के अनुच्छेद 25 द्वारा की है । अतः सरकार किसी व्यक्ति के धर्म या अंतःकरण के परिवर्तन के बारे में घोषणा के संबंध में कार्रवाई करेगी । ऐसे विनिश्चय की परिपक्वता को किसी प्राधिकारी द्वारा किसी परीक्षा के अध्यधीन नहीं रखा जा सकता ।

6. यदि सरकार ऐसे किसी दावे की सत्यता के बारे में संदेह करती है तो सरकार ऐसी घोषणा की सत्यता की जांच करा सकती है । निस्संदेह सरकारी अभिलेखों में परिवर्तन कराने के प्रयोजन के लिए और किसी प्रक्रिया को व्यवहार में लाने के लिए सरकार कतिपय साक्ष्य की अपेक्षा कर सकती है । तथापि, इसका यह अर्थ नहीं है कि किसी संपरिवर्तन को प्रभावी करने के लिए सरकार ऐसे किसी प्रमाणपत्र को प्रस्तुत करने के लिए बल दे सकती हो जो ऐसे किसी प्राधिकारी या संगठन द्वारा जारी किया गया हो जिसे ऐसा प्रमाणपत्र जारी करने के लिए अनन्य शक्ति दी गई है । व्यवहार करने के अधिकार पर ऐसा कोई निबंधन नहीं लगाया जा सकता कि प्रमाणपत्र किसी संगठन या किसी संस्था द्वारा जारी किया जाए । धर्म को मानने की स्वतंत्रता का यह अर्थ है कि इसे मानने में कोई रूकावट न हो । यदि सरकारी आदेश को इसी प्रकार से क्रियान्वित किया जाता है तो कोई व्यक्ति जो अपना धर्म संपरिवर्तित करता है, धर्म

संपरिवर्तन की अपनी प्रास्थिति को घोषित करने के लिए ऐसे संगठन की दया पर निर्भर होगा । सरकार किसी व्यक्ति को इस बात के लिए बाध्य नहीं कर सकती कि वह अपने धर्म के संपरिवर्तन की पुष्टि करे और वह भी केवल किसी विशिष्ट रीति से और प्राधिकृत संगठन द्वारा जारी प्रमाणपत्र द्वारा । धर्म को मानने की स्वतंत्रता जिसे संविधान के अधीन गारंटीकृत किया गया है, किसी अर्हता द्वारा निर्बंधित नहीं है । धर्म की शक्ति ऐसी चीज है जिस पर कोई व्यक्ति अन्तर्निहित रूप से अपनी मान्यता रखता है । धर्म को संपरिवर्तित करने की घोषणा मात्र सरकार के लिए सरकारी अभिलेखों में ऐसे संपरिवर्तन को प्रभावी करने के लिए कार्रवाई करने के लिए पर्याप्त होगी । जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है कि यदि सरकार को ऐसी घोषणा की सत्यता के बारे में संदेह होता है तो सरकार राजस्व कर्मचारी यथा तहसीलदार द्वारा जांच करा सकती है । यदि सरकार इस बात पर बल देती है कि किसी व्यक्ति द्वारा परिवर्तन प्रभावी करने के लिए राज्य द्वारा प्राधिकृत संगठन द्वारा जारी ऐसा प्रमाणपत्र पेश करने की आवश्यकता है तो निश्चित रूप से यह संविधान द्वारा ऐसे व्यक्तियों को गारंटीकृत स्वतंत्रता पर अंकुश लगाने के बराबर होगा । धर्म को मानने के अधिकार में ऐसा अधिकार भी सम्मिलित है जिसे विश्वास या धर्म कहा जाएगा ।

7. यद्यपि सरकारी आदेश को भी आक्षेपित किया गया है तथापि, यह न्यायालय इस अर्थ में आदेश में हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं समझता कि सरकार को किसी नागरिक द्वारा अपनी प्रास्थिति की घोषणा के लिए कोई अनुरोध करने पर कार्रवाई करने के लिए ऐसे प्राधिकारी को अनन्य अधिकार नहीं दिया जा सकता । सरकार द्वारा जारी सरकारी आदेश में निदेश को केवल निदेशात्मक रूप में ही माना जा सकता है न कि आज्ञापक रूप में ।

8. इस रिट याचिका को यह अभिनिर्धारित करते हुए निपटाया जाता है कि सरकार किसी नागरिक द्वारा अपने धर्म को संपरिवर्तित करने और अपने नाम को संपरिवर्तित करने की घोषणा के लिए कोई अनुरोध करने पर कार्रवाई करने के लिए किसी प्राधिकृत संस्था से कोई प्रमाणपत्र प्रस्तुत करने के लिए आज्ञापक अपेक्षा के रूप में बल नहीं दे सकती । सरकार कर्मचारियों द्वारा ऐसी घोषणा के बारे में जांच, यदि वह चाहती है, करा सकती है । सरकारी आदेशों के संबंध में आक्षेप यह अभिनिर्धारित करते हुए ऊपर उल्लिखित कारणों से निरस्त किया जाता है कि सरकारी आदेश

किसी भी प्रकार से किसी नागरिक को अपना धर्म और नाम परिवर्तित करने की घोषणा के लिए बाधक नहीं होगा और सरकार ऐसी किसी घोषणा पर कार्रवाई करेगी ।

9. उपर्युक्त को दृष्टिगत करते हुए याची के अनुरोध पर प्रदर्श पी-7 (क) और (ख) में उल्लिखित संगठन/संस्था द्वारा जारी प्रमाणपत्र को पेश करने पर बल दिए बिना विचार करेगी । इस बारे में 3 मास की अवधि के भीतर समुचित कार्रवाई की जाएगी ।

10. उपर्युक्त संप्रेक्षणों और निदेशों के साथ इस रिट याचिका का निपटान किया जाता है ।

तद्नुसार रिट याचिका का निपटान किया गया ।

मह.

(2018) 2 सि. नि. प. 591 **केरल**

प्रणव ए. एम. और एक अन्य

बनाम

सचिव, इंगनदियूर ग्राम पंचायत और एक अन्य

तारीख 5 अप्रैल, 2018

न्यायमूर्ति ए. मोहम्मद मुश्ताक

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25) – धारा 8 [सपठित केरल विवाह रजिस्ट्रीकरण (सामान्य) नियम, 2008 का नियम 6 और नियम 10] – एक पक्षकार द्वारा धर्म परिवर्तन – विवाह के रजिस्ट्रीकरण के लिए आवेदन – रजिस्ट्रार द्वारा विवाह की विधिमान्यता के संबंध में संदेह होने पर रजिस्ट्रीकरण से इनकार – विधिमान्यता – रजिस्ट्रार ऐसे विवाह को रजिस्ट्रीकृत करने के लिए आबद्ध है – तथापि, वह अपना यह समाधान करने के लिए जांच करा सकता है कि क्या धर्म परिवर्तन विधिमान्य है या नहीं ।

प्रथम याची एक भारतीय नागरिक है और हिन्दू सम्प्रदाय से संबंधित है । द्वितीय याची फिलिपीना की नागरिक है । याचियों के अनुसार द्वितीय

याची ने वल्लीवट्टम श्री अय्यप्पा, जिला त्रिचूर मंदिर में हिन्दू रीति-रिवाजों का अनुसरण करते हुए हिन्दू धर्म में अपना धर्म परिवर्तन कर लिया है और मंदिर प्राधिकारियों द्वारा उक्त तथ्य को साक्ष्यांकित करते हुए एक प्रमाणपत्र जारी किया गया था । उनका तारीख 13 सितंबर, 2013 को विवाह संपन्न हुआ था । यह विवाह उस सम्प्रदाय को जिसका कि प्रथम याची है, लागू रूढ़ियों के अनुसार हुआ था । याचियों ने केरल विवाह रजिस्ट्रीकरण (सामान्य) नियम, 2008 के अधीन विवाह को रजिस्ट्रीकृत कराने के लिए विवाह रजिस्ट्रार के समक्ष समावेदन किया था । रजिस्ट्रार ने विवाह को रजिस्ट्रीकृत करने से इनकार कर दिया क्योंकि उसे हिन्दू विवाह अधिनियम के अनुसरण में विवाह की विधिमान्यता के संबंध में संदेह हुआ था । याचियों ने यह प्रकथन किया है कि चूंकि वे हिन्दू सम्प्रदाय के हैं इसलिए रजिस्ट्रार इस घोषणा की क्या वे हिन्दू सम्प्रदाय से संबंधित हैं, विधिमान्यता की जांच करने के लिए सक्षम नहीं था । रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकरण से इनकार करने पर वर्तमान रिट याचिका फाइल की गई । रिट याचिका मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – न्यायालय को विद्वान् न्याय-मित्र द्वारा दी गई दलील में बल प्रतीत होता है । विवाह का रजिस्ट्रीकरण स्वतः नहीं होता है । ऐसे विवाह की वैधता भारत में लागू विधि पर निर्भर करती है । रजिस्ट्रीकरण अधिकारी द्वारा विवाह का रजिस्ट्रीकरण करने के लिए समाधान करने की रीति क्या है, यह एक ऐसा प्रश्न है, जिस विवाद्यक का उत्तर दिया जाना है और जो लोक विधि उपचार से संबंधित है । जहां कोई व्यक्ति यह घोषणा करता है कि वह हिन्दू धर्म में परिवर्तित हो गया है, वहां यह बात लोक प्राधिकारी द्वारा कार्रवाई करने के लिए पर्याप्त होगी । हिन्दुत्व में परिवर्तन को प्रभावी बनाने के लिए कोई औपचारिक धर्मानुष्ठान करना आवश्यक नहीं है । किसी हिन्दू के रूप में धर्म परिवर्तन के लिए विहित विशिष्ट प्रक्रिया के अभाव में लोक प्राधिकारी किसी असद्भावना के बिना जो उपदर्शित की जा सकती है, ऐसे किसी अनुरोध पर कार्रवाई करने से इनकार नहीं कर सकता । यह उल्लेखनीय है कि रजिस्ट्रार केवल विवाह की वैधता के बारे में संक्षिप्त जांच करने के लिए कर्तव्यबद्ध है । रजिस्ट्रार ऐसे विवाह की सक्षमता या वैधता को विनिश्चित करने के लिए सक्षम प्राधिकारी नहीं है । उसे केवल प्रथमदृष्ट्या यह विचारणा करनी चाहिए कि क्या विवाह पक्षकारों को लागू स्वीय विधि के अनुसरण में किया गया है । जब एक बार रजिस्ट्रार का ऐसा समाधान हो जाता है तो उसे आगे इस

तथ्य के बारे में जांच करनी चाहिए कि क्या हिन्दुत्व या किसी अन्य धर्म में परिवर्तन विधिमान्य है या नहीं ? जैसीकि विद्वान् न्याय-मित्र द्वारा ठीक ही दलील दी गई है कि भारतीय संदर्भ में किसी सम्प्रदाय के बारे में स्वीकारोक्ति या जानकारी ऐसा धर्म परिवर्तन करने वाले व्यक्ति के सामाजिक संबंधों पर आधारित समझी जाती है । तथापि, नियमों के अधीन किसी विवाह को रजिस्ट्रीकृत किए जाने के लिए कोई जांच अत्यंत सीमित होती है क्योंकि ऐसी जांच विवाह के 45 दिन की संक्षिप्त अवधि के भीतर पूरी की जानी चाहिए । इस पृष्ठभूमि में रजिस्ट्रार के लिए यह अत्यंत कठिन है कि वह इस बात का पता लगाए कि क्या ऐसा धर्म परिवर्तन करने वाले व्यक्ति को सम्प्रदाय द्वारा स्वीकार किया गया है या नहीं ? यह उल्लेखनीय है कि व्यक्ति के अनुसार विवाह की वैधता किसी समुचित प्रक्रम पर संबंधित न्यायालय द्वारा विचार के लिए अभी भी खुली हुई है, यदि ऐसे विवाह के बारे में कोई विवाद उत्पन्न होता है । अतः यह स्पष्ट है कि विवाह के रजिस्ट्रीकरण का सम्पूर्ण प्रयोजन विवाह के साक्ष्य को प्राप्त करने के लिए प्रथमदृष्ट्या संकेत देना होता है न कि ऐसे विवाह की विधिमान्यता का सबूत देना । विवाह की विधिमान्यता व्यक्ति को लागू स्वीय विधि पर निर्भर करती है, यदि पक्षकार स्वीय विधि के अनुसरण में विवाह करते हैं अथवा यह ऐसी सांसारिक विधि पर निर्भर करती है जो ऐसे विवाह को लागू होती है । नियमों के संदर्भ के अधीन विवाह के संबंध में प्रश्न केवल ऐसी जांच करने तक सीमित है कि क्या पक्षकारों ने पक्षकारों को लागू स्वीय विधि के अनुसरण में विवाह किया है अथवा उन्होंने उनको लागू सांसारिक विधि के अनुसरण में विवाह किया है । जब एक बार रजिस्ट्रार द्वारा अपना यह समाधान कर लिया गया हो तो रजिस्ट्रार इस बात के होते हुए भी ऐसे विवाह को रजिस्ट्रीकृत करने के लिए आबद्ध है कि उसे उन व्यक्तियों को लागू विधि के अनुसरण में ऐसे विवाह को संविदा के लिए या सम्पन्न करने के लिए उनकी सक्षमता के संबंध में कोई संदेह है । इस तथ्य को दृष्टिगत करते हुए कि इस बारे में कोई विवाद नहीं है कि पक्षकारों ने विवाह सम्पन्न करने के लिए हिन्दू विवाह के अनुसरण में धर्मानुष्ठान और रीतियां पूरी की हैं, रजिस्ट्रार को विवाह को रजिस्ट्रीकृत करना चाहिए । तद्नुसार रजिस्ट्रार को यह निदेश करते हुए रिट याचिका मंजूर की जाती है कि वह विवाह को रजिस्ट्रीकृत करे । यह न्यायालय विद्वान् न्याय-मित्र के प्रति आभार व्यक्त करता है क्योंकि उन्होंने इस मामले में अन्तर्वलित विभिन्न पहलुओं पर इस न्यायालय की पूर्ण सहायता की है । (पैरा 5, 6 और 7)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2018]	2018 (2) के. एच. सी. 116 : **आयशा** बनाम **निदेशक मुद्रण निदेशालय ;**	5
[2016]	2016 (4) के. एच. सी. 600 : **थंकम्मा कोशी** बनाम **केरल राज्य और अन्य ;**	4
[2016]	ए. आई. आर. 2016 केरल 1 : **राजेश राजन** बनाम **मुख्य महा रजिस्ट्रार विवाह (सामान्य), त्रिवेन्द्रम और अन्य ;**	4
[2014]	2014 (1) के. एच. सी. 804 : **साबू के. एलियास** बनाम **केरल राज्य और अन्य ;**	4
[2010]	ए. आई. आर. 2010 एन. ओ. सी. 333 = 2009 (4) के. एच. सी. 560 : **बेटसी और एक अन्य** बनाम **नील ;**	5
[2005]	2005 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 2939 = 2006 के. एच. सी. 121 : **सीमा** बनाम **अश्विनी कुमार ;**	5
[1975]	1975 (2) के. एच. सी. 299 : **राम मोहन दास** बनाम **त्रावणकोर देवासम बोर्ड और अन्य ;**	5
[1971]	ए. आई. आर. 1971 एस. सी. 2352 = 1978 के. एच. सी. 429 : **पेरुमल नाडार (मृतक) द्वारा विधिक प्रतिनिधि** बनाम **पोन्नूस्वामी नाडार (अवयस्क)** ।	5

आरंभिक (सिविल) रिट अधिकारिता : 2018 की रिट याचिका (सिविल) सं. 7574.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन सिविल रिट याचिका ।

याची की ओर से श्री पी. के. मनमोहनन

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री सी. जोसफ जॉनी, (श्रीमती) इस्मीनी जोस, एस. गोपीनाथन और (श्रीमती) सूर्या बिनॉय न्याय-मित्र

न्यायमूर्ति ए. मोहम्मद मुश्ताक – प्रथम याची एक भारतीय नागरिक है और हिन्दू सम्प्रदाय से संबंधित है । द्वितीय याची फिलिपीना की नागरिक है । याचियों के अनुसार द्वितीय याची ने वल्लीवट्टम श्री अय्यप्पा, जिला त्रिचूर मंदिर में हिन्दू रीति-रिवाजों का अनुसरण करते हुए हिन्दू धर्म में अपना धर्म परिवर्तन कर लिया है और मंदिर प्राधिकारियों द्वारा उक्त तथ्य को साक्ष्यांकित करते हुए एक प्रमाणपत्र जारी किया गया था । उनका तारीख 13 सितंबर, 2013 को विवाह संपन्न हुआ था । यह विवाह उस सम्प्रदाय को जिसका कि प्रथम याची है, लागू रूढ़ियों के अनुसार हुआ था ।

2. याचियों ने केरल विवाह रजिस्ट्रीकरण (सामान्य) नियम, 2008 (जिन्हें आगे संक्षेप में 'नियम' कहा गया है) के अधीन विवाह को रजिस्ट्रीकृत कराने के लिए विवाह रजिस्ट्रार के समक्ष समावेदन किया था । रजिस्ट्रार ने विवाह को रजिस्ट्रीकृत करने से इनकार कर दिया क्योंकि उसे हिन्दू विवाह अधिनियम के अनुसरण में विवाह की विधिमान्यता के संबंध में संदेह हुआ था । याचियों ने यह प्रकथन किया है कि चूंकि वे हिन्दू सम्प्रदाय के हैं, इसलिए रजिस्ट्रार इस घोषणा कि क्या वे हिन्दू सम्प्रदाय से संबंधित हैं, की विधिमान्यता की जांच करने के लिए सक्षम नहीं था ।

3. अतः यह प्रश्न उद्भूत हुआ है कि क्या रजिस्ट्रार नियमों के अधीन ऐसे विवाह की विधिमान्यता के बारे में अपना समाधान दिए बिना पक्षकारों द्वारा की गई घोषणा के आधार पर किसी विवाह को रजिस्ट्रीकृत करने के लिए आबद्ध है । इस न्यायालय ने विवाद्यक के महत्व पर विचार करते हुए श्रीमती सूर्या बिनॉय को न्याय-मित्र के रूप में नियुक्त किया ।

4. हिन्दू विवाह अधिनियम के अधीन विवाह केवल ऐसे दो व्यक्तियों के बीच किया जा सकता है जो हिन्दू हैं । जहां पक्षकारों में से कोई एक हिन्दू नहीं है और मात्र इस कारण कि विवाह संस्कार हिन्दू धर्म की रीतियों के अनुसार हुआ है, हिन्दू विवाह अधिनियम के अधीन विधिमान्य नहीं हो सकता । विद्वान् न्याय-मित्र ने मेरे समक्ष इस न्यायालय द्वारा विनिश्चित

साबू के. एलियास बनाम **केरल राज्य और अन्य**[1] ; **राजेश राजन** बनाम **मुख्य महा रजिस्ट्रार विवाह (सामान्य), त्रिवेन्द्रम और अन्य**[2] और **थंकम्मा कोशी** बनाम **केरल राज्य और अन्य**[3] वाले मामलों का निर्देश किया है । विद्वान् न्याय-मित्र ने यह दलील दी है कि तथ्यतः रजिस्ट्रार ऐसे विवाह की विधिमान्यता के बारे में विनिश्चय नहीं करेगा तथापि, वह केवल यह समाधान कर सकता है कि क्या वह ऐसे विवाह को रजिस्ट्रीकृत करने के लिए आबद्ध है या नहीं । विद्वान् न्याय-मित्र ने विशेष रूप से मेरे समक्ष तारीख 16 फरवरी, 2015 के संशोधन के जरिए अंतः स्थापित नियम 6 के चौथे परंतुक का निर्देश किया है । इस परंतुक में यह कहा गया है कि भारतीय विधि के अनुसार सम्पन्न विवाह के सिवाय कोई अन्य विवाह इन नियमों के अधीन रजिस्ट्रीकृत नहीं किया जाएगा । विद्वान् न्याय-मित्र ने नियम 10 का निर्देश करने के पश्चात् ऐसे समाधान की प्रकृति के बारे में बताया है जो विवाह के एक वर्ष के पश्चात् रजिस्ट्रीकरण के लिए पेश करने पर किया जाएगा जैसा कि महा रजिस्ट्रार द्वारा उल्लेख किया गया है । यह भी दलील दी गई है कि विवाह का रजिस्ट्रीकरण केवल यह समाधान होने पर किया जाएगा कि विवाह सम्पन्न हुआ है और तब महा रजिस्ट्रार स्थानीय रजिस्ट्रार को विवाह रजिस्ट्रीकृत करने के लिए उपयुक्त निदेश देने के लिए आबद्ध है ।

5. मुझे विद्वान् न्याय-मित्र द्वारा दी गई दलील में बल प्रतीत होता है । विवाह का रजिस्ट्रीकरण स्वतः नहीं होता है । ऐसे विवाह की वैधता भारत में लागू विधि पर निर्भर करती है । रजिस्ट्रीकरण अधिकारी द्वारा विवाह का रजिस्ट्रीकरण करने के लिए समाधान करने की रीति क्या है, यह एक ऐसा प्रश्न है, जिस विवाद्यक का उत्तर दिया जाना है और जो लोक विधि उपचार से संबंधित है । जहां कोई व्यक्ति यह घोषणा करता है कि वह हिन्दू धर्म में परिवर्तित हो गया है, वहां यह बात लोक प्राधिकारी द्वारा कार्रवाई करने के लिए पर्याप्त होगी । हिन्दुत्व में परिवर्तन को प्रभावी बनाने के लिए कोई औपचारिक धर्मानुष्ठान करना आवश्यक नहीं है । किसी हिन्दू के रूप में धर्म परिवर्तन के लिए विहित विशिष्ट प्रक्रिया के अभाव में लोक प्राधिकारी किसी असद्भावना के बिना जो उपदर्शित की जा सकती है, ऐसे

---

[1] 2014 (1) के. एच. सी. 804.

[2] ए. आई. आर. 2016 केरल 1.

[3] 2016 (4) के. एच. सी. 600.

किसी अनुरोध पर कार्रवाई करने से इनकार नहीं कर सकता । मैं माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **पेरुमल नाडार (मृतक) द्वारा विधिक प्रतिनिधि** बनाम **पोन्नूस्वामी नाडार (अवयस्क)**[1] वाले मामले में दिए गए विनिश्चय और इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा **बेटसी और एक अन्य** बनाम **नील**[2] तथा विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा **राम मोहन दास** बनाम **त्रावणकोर देवासम बोर्ड और अन्य**[3] वाले मामले में दिए गए निर्णयों को दृष्टिगत करते हुए इस मत की पुष्टि करता हूं । भारत के संविधान के अनुच्छेद 25 में यथा उल्लिखित किसी धर्म पर व्यवहार करने की स्वतंत्रता नागरिकों तथा गैर-नागरिकों दोनों को ही उपलब्ध है । सरकार या कोई अन्य लोक अधिकारी इस बात पर बल नहीं दे सकता कि वह केवल ऐसी घोषणा पर ही कार्रवाई कर सकता है जो इस संबंध में सरकार द्वारा नियुक्त किसी प्राधिकारी द्वारा जारी किए गए प्रमाणपत्र पर आधारित हो । **आयशा** बनाम **निदेशक मुद्रण निदेशालय**[4] वाला मामला देखिए । यह उल्लेखनीय है कि रजिस्ट्रार केवल विवाह की वैधता के बारे में संक्षिप्त जांच करने के लिए कर्तव्याबद्ध है । रजिस्ट्रार ऐसे विवाह की सक्षमता या वैधता को विनिश्चित करने के लिए एक सक्षम प्राधिकारी नहीं है । उसे केवल प्रथमदृष्ट्या यह विचारणा करनी चाहिए कि क्या विवाह पक्षकारों को लागू स्वीय विधि के अनुसरण में किया गया है । जब एक बार रजिस्ट्रार का ऐसा समाधान हो जाता है तो उसे आगे इस तथ्य के बारे में जांच करनी चाहिए कि क्या हिन्दुत्व या किसी अन्य धर्म में परिवर्तन विधिमान्य है या नहीं । जैसीकि विद्वान् न्याय-मित्र द्वारा ठीक ही दलील दी गई है कि भारतीय संदर्भ में किसी सम्प्रदाय के बारे में स्वीकारोक्ति या जानकारी ऐसा धर्म परिवर्तन करने वाले व्यक्ति के सामाजिक संबंधों पर आधारित समझी जाती है । तथापि नियमों के अधीन किसी विवाह को रजिस्ट्रीकृत किए जाने के लिए कोई जांच अत्यंत सीमित होती है क्योंकि ऐसी जांच विवाह के 45 दिन की संक्षिप्त अवधि के भीतर पूरी की जानी चाहिए । इस पृष्ठभूमि में रजिस्ट्रार के लिए यह अत्यंत कठिन है कि वह इस बात का पता लगाए कि क्या ऐसा धर्म परिवर्तन करने वाले व्यक्ति को सम्प्रदाय द्वारा स्वीकार किया गया है या नहीं । यह उल्लेखनीय है कि व्यक्ति के अनुसार विवाह की वैधता किसी समुचित प्रक्रम पर संबंधित न्यायालय द्वारा विचार के लिए

---

[1] ए. आई. आर. 1971 एस. सी. 2352 = 1978 के. एच. सी. 429.

[2] ए. आई. आर. 2010 एन. ओ. सी. 333 = 2009 (4) के. एच. सी. 560.

[3] 1975 के. एच. सी. 299.

[4] 2018 (2) के. एच. सी. 116.

अभी भी खुली हुई है, यदि ऐसे विवाह के बारे में कोई विवाद उत्पन्न होता है । तथ्यतः नियम **सीमा** बनाम **अश्विनी कुमार**[1] वाले मामले में दिए गए निदेशों के अनुसरण में विरचित किए गए हैं जिसमें माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि रजिस्ट्रीकरण स्वत: विधिमान्य विवाह का सबूत नहीं हो सकता और ऐसा रजिस्ट्रीकरण किसी विवाह की विधिमान्यता के संबंध में अवधारक कारक नहीं होगा । अत: यह स्पष्ट है कि विवाह के रजिस्ट्रीकरण का सम्पूर्ण प्रयोजन विवाह के साक्ष्य को प्राप्त करने के लिए प्रथमदृष्ट्या संकेत देना होता है न कि ऐसे विवाह की विधिमान्यता का सबूत देना । विवाह की विधिमान्यता व्यक्ति को लागू स्वीय विधि पर निर्भर करती है, यदि पक्षकार स्वीय विधि के अनुसरण में विवाह करते हैं अथवा यह ऐसी सांसारिक विधि पर निर्भर करती है जो ऐसे विवाह को लागू होती है ।

6. नियमों के संदर्भ के अधीन विवाह के संबंध में प्रश्न केवल ऐसी जांच करने तक सीमित है कि क्या पक्षकारों ने पक्षकारों को लागू स्वीय विधि के अनुसरण में विवाह किया है अथवा उन्होंने उनको लागू सांसारिक विधि के अनुसरण में विवाह किया है । जब एक बार रजिस्ट्रार द्वारा अपना यह समाधान कर लिया गया हो तो रजिस्ट्रार इस बात के होते हुए भी ऐसे विवाह को रजिस्ट्रीकृत करने के लिए आबद्ध है कि उसे उन व्यक्तियों को लागू विधि के अनुसरण में ऐसे विवाह को संविदा के लिए या सम्पन्न करने के लिए उनकी सक्षमता के संबंध में कोई संदेह है ।

7. इस तथ्य को दृष्टिगत करते हुए कि इस बारे में कोई विवाद नहीं है कि पक्षकारों ने विवाह सम्पन्न करने के लिए हिन्दू विवाह के अनुसरण में धर्मानुष्ठान और रीतियां पूरी की हैं, रजिस्ट्रार को विवाह को रजिस्ट्रीकृत करना चाहिए । तद्नुसार रजिस्ट्रार को यह निदेश करते हुए रिट याचिका मंजूर की जाती है कि वह विवाह को रजिस्ट्रीकृत करे । यह न्यायालय विद्वान् न्याय-मित्र के प्रति आभार व्यक्त करता है क्योंकि उन्होंने इस मामले में अन्तर्वलित विभिन्न पहलुओं पर इस न्यायालय की पूर्ण सहायता की है ।

रिट याचिका मंजूर की गई ।

मह.

---

[1] 2005 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 2939 = 2006 के. एच. सी. 121.

टी. गंगकाक इन्टरप्राइसेज, (मैसर्स) अरुणाचल प्रदेश

बनाम

अरुणाचल प्रदेश राज्य और अन्य

तारीख 15 मई, 2018

न्यायमूर्ति कल्याण राय सुराणा

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 14 [सपठित आई. टी. बी. का खंड 23] – निविदा – निविदाकर्ता द्वारा निविदा से संबंधित दस्तावेजों के साथ दो से अधिक कार्यों के बारे में शपथपत्र पेश न किया जाना – प्रभाव – यह आधार निविदा बोली की खारिजी के लिए उपयुक्त नहीं है क्योंकि ऐसी कोई कमी खंड 23 के अधीन सुधार्य है ।

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 14 – सरकारी कार्यों के लिए निविदा – बोली की खारिजी – खारिजी की सूचना निविदा खोलने वाले कार्यालय में चस्पा न करके दूसरे स्थान पर स्थित खंड कार्यालय में चस्पा किया जाना – दूसरे कार्यालय में बोली की खारिजी को प्रदर्शित किया जाना न्यायसंगत नहीं है ।

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 24 और 226 – निविदा बोली की खारिजी – निविदा आबंटन को विलंब से आक्षेपित किया जाना – रिट फाइल करने के समय तक परियोजना का अधिकतर कार्य पूर्ण हो जाना – ऐसे किसी मामले में रिट याची को कोई अनुतोष मंजूर करना लोक हित में नहीं होगा ।

याची ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन इस रिट याचिका द्वारा अपनी बोली से संबंधित अधीक्षक इंजीनियर, पासीघाट, पूर्वी सियांग जिला के कार्यालय द्वारा जारी एन. आई. टी. सं. ई. ई. ए./आर. डब्ल्यू. डी. (एस. आई. डी. एफ.)/एन. आई. टी.-23/2105-16/7317 खारिजी को आक्षेपित किया है । यह बोली डार्क और कंबा स्थित 'कांस्ट्रक्शन आफ़ मल्टीपरपज़ वुडन बैडमिंटन कोर्ट्स और 27 लाइरंबा कांस्टीट्यूटेंसी के अधीन संरचनात्मक विकास सहित योमचा और कंबा जनरल ग्राउंड' की दर्शक दीर्घा के निर्माण से संबंधित थी । बोली को इस आधार पर खारिज किया गया है कि याची की तकनीकी बोली अनुकूल

नहीं पाई गई है । रिट याचिका भागतः मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – अतः दूसरा विवाद्यक जिस पर विचार किए जाने की आवश्यकता है, यह है कि क्या बोली के साथ शपथपत्र का प्रस्तुत न करना, याची द्वारा पेश की गई बोली के लिए घातक हो सकता है । इस संबंध में यह उपदर्शित है कि आई. टी. बी. के खंड 26 में मानक बोली दस्तावेजों के बारे में यह उपबंधित है कि बोली के पात्रता मानदंड को पूरा किया जाना चाहिए जैसा कि आई. टी. बी. के खंड 3 और 4 में परिभाषित है और इसलिए आई. टी. बी. ने मानक बोली संबंधी पात्रता के लिए और बोलीकर्ता की अर्हताओं के लिए उपबंध किया है । इस संबंध में विद्वान् ज्येष्ठ सरकारी अधिवक्ता ने यह दलील दी है कि जिला बेस्ड इंटरप्रिन्यूर एंड प्रोफेशनल (इनसेंटिव, डेवलपमेंट एंड प्रमोशन) अधिनियम, 2015 की यह अपेक्षा है कि ऐसा कोई निविदा करने वाला निविदा प्रक्रिया में भाग लेने का पात्र नहीं होगा यदि उसने अरुणाचल प्रदेश राज्य के भीतर किसी सरकारी विभाग में 2 विद्यमान स्वीकृति कार्य धारित कर रखे हैं । तथापि, उक्त शपथपत्र जो उक्त अधिनियम, 2015 के अधीन प्रस्तुत किया जाना अपेक्षित है, आई. टी. बी. के खंड 3 और 4 में बोलीकर्ता की पात्रता या अर्हता के एक आधार के रूप में उपबंधित नहीं किया गया है ।. इस न्यायालय की राय में आई. टी. बी. का खंड 3.1 का उक्त उपबंध यह उपबंधित करता है कि बोलियों का आमंत्रण ऐसे सभी व्यक्तियों के लिए था जो रिट याचिका के पृष्ठ सं. 164 पर उल्लिखित आई. टी. बी. से संबद्ध पात्रता मानदंड पूरा करते हैं । उक्त सूची में शपथपत्र का उल्लेख नहीं है । अतः न्यायालय इस आधार पर याची की बोली की खारिजी को न्यायोचित नहीं मान सकता कि शपथपत्र उपलब्ध नहीं था क्योंकि यह न्यायालय याची की इस दलील को स्वीकार करता है कि तकनीकी मूल्यांकन के प्रयोजन के लिए याची की बोली वर्तमान मामले में उक्त शपथपत्र के आधार पर खारिज नहीं की जा सकती । इस न्यायालय का यह मत है कि शपथपत्र का अभाव केवल एक सुधार्य कमी थी और इसे आई. टी. बी. के खंड 23 के अधीन सुधारा जा सकता है । इसके अतिरिक्त जैसा कि ऊपर निर्देश किया गया है कि आई. टी. बी. का परिशिष्ट यह उपबंधित करता है कि बोली आर. डब्ल्यू. डी., पासीघाट के अधीक्षण इंजीनियर के कार्यालय में खोली जानी थी और इसलिए यह न्यायालय विद्वान् ज्येष्ठ सरकारी अधिवक्ता द्वारा दी गई इस दलील को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है कि याची की बोली की खारिजी की

सूचना देने में कोई दोष नहीं था क्योंकि खारिजी कार्यपालक इंजीनियर, आलो के कार्यालय में अधिसूचित कर दी गई थी । (पैरा 19 और 20)

इस संबंध में प्रत्यर्थी सं. 4 द्वारा विरोध स्वरूप फाइल किए गए शपथपत्र के पैरा 5 का निर्देश करना सुसंगत होगा जिसमें यह कहा गया है कि बोली के खोलने और तकनीकी बोली के मूल्यांकन के बारे में आलो के खंड कार्यालय में प्रदर्शित गया था जबकि इस शपथपत्र के पैरा 7 में आधार लेते हुए यह उल्लेख किया गया था कि तकनीकी बोली मूल्यांकन आलो के खंड कार्यालय और पासीघाट के सर्किल कार्यालय में प्रदर्शित कर दिया गया था । अतः प्रत्यर्थी सं. 4 द्वारा विरोध में फाइल किए गए उक्त शपथपत्र के पैरा 5 में किए गए कथन के आधार पर खंड कार्यालय में याची की बोली की खारिजी का प्रकट किया जाना अवैध माना जाएगा क्योंकि इसे आई. टी. बी. के परिशिष्ट (रिट याचिका के पृष्ठ 164) के अनुसार पासीघाट स्थित अधीक्षण इंजीनियर के कार्यालय में अधिसूचित किया जाना अवैध है क्योंकि सूचना उस स्थान पर दिया जाना अपेक्षित है जहां निविदा खोली गई है । (पैरा 21)

यह बात दूसरे प्रश्न को उद्‌भूत करती है जिसे प्रत्यर्थी सं. 5 के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल तथा विद्वान् राज्य काउंसेल द्वारा उठाया गया है और वह यह है कि क्या इस प्रक्रम पर जब प्रत्यर्थी सं. 5 द्वारा पर्याप्त कार्य किया जा चुका है और जब परियोजना पूरी होने के निकट है, निविदा में हस्तक्षेप किया जा सकता है । इस तथ्य पर विचार करते हुए कि सरकारी कोष की लागत से पर्याप्त कार्य किया जा चुका है, इस न्यायालय का यह मत है कि वर्तमान मामले में जहां परियोजना पूरी होने के निकट है, प्राइवेट प्रत्यर्थी सं. 5 द्वारा प्रश्नगत कार्य को पूरा करने में ही लोक हित है क्योंकि परियोजना पर अत्यधिक लोक धन खर्च किया जा चुका है और लाभदायक संविदा कार्य लोक प्रयोजन के उपयोग के लिए तैयार होने की संभावना है । अतः इस मामले में लोक हित के साथ-साथ वाणिज्यिक अन्तर्वलन को देखते हुए इस न्यायालय का यह मत है कि इस आधार पर कि उसकी बोली तकनीकी रूप से उत्तर देने वाली नहीं पाई गई थी, याची की बोली की खारिजी में हस्तक्षेप करना उचित नहीं है और इसलिए यह न्यायालय याची द्वारा इस न्यायालय में असाधारण विलंब से समावेदन करने के कारण इस प्रक्रम पर प्राइवेट प्रत्यर्थी सं. 5 को आबंटित कार्य में हस्तक्षेप करने के लिए तैयार नहीं है क्योंकि यह स्पष्ट है कि याची इस बात से अवगत था कि उसकी बोली तारीख 29 मार्च, 2017 को खारिज

कर दी गई थी और उसके बावजूद उसने देरी से अर्थात् तारीख 7 अक्तूबर, 2017 को इस न्यायालय में समावेदन किया था । तथापि, यह आदेश याची के लिए उसकी बोली की अवैध खारिजी के लिए उसे पहुंचे नुकसान के लिए राज्य के विरुद्ध कार्यवाही करने से निवारित नहीं करेगा क्योंकि इस न्यायालय का यह निश्चित मत है कि याची की बोली की खारिजी के लिए शपथपत्र का अभाव एक बेहतर या युक्तियुक्त आधार नहीं था क्योंकि प्रश्नगत शपथपत्र का अभाव बोलीकर्ता के निदेशों (आई. टी. बी.) के खंड 23 के अर्थान्तर्गत सुधार्य है । (पैरा 22 और 23)

प्रभेदित निर्णय

		पैरा
[2017]	2017 की रिट याचिका (सिविल) सं. 203, तारीख 21 जून 2017 को विनिश्चित : **मैसर्स तामची कुसूक** बनाम **अरुणाचल प्रदेश राज्य और अन्य ;**	14
[2014]	ए. आई. आर. 2014 एस. सी. 390 = (2014) 3 एस. सी. सी. 760 : **मां बिन्दा एक्सप्रेस कैरियर और एक अन्य** बनाम **नार्थ ईस्ट फ्रंटियर रेलवे और अन्य ;**	17
[2014]	ए. आई. आर. 2014 एस. सी. 3779 = (2014) 3 एस. सी. सी. 493 : **संजय कुमार शुक्ला** बनाम **भारत पैट्रोलियम कारपोरेशन लिमिटेड और अन्य ;**	17
[2007]	2007 (4) जी. एल. टी. 236 : **ब्रहमपुत्र कनसोरटियम लिमिटेड और एक अन्य** बनाम **स्टेट आफ असम और अन्य ;**	11
[1991]	ए. आई. आर. 1991 एस. सी. 1579 = (1991) 3 एस. सी. सी. 273 : **मैसर्स पोद्दार स्टील कारपोरेशन** बनाम **मैसर्स गणेश इंजीनियरिंग वर्क्स और अन्य ।**	11

आरंभिक (सिविल) रिट अधिकारिता : 2017 की रिट याचिका (सिविल) सं. 693.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद, 226 के अधीन सिविल रिट याचिका ।

याची की ओर से श्री बी. कौशिक

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री बी. सोकी, पी. के. तिवारी और के. सक्सेना

न्यायमूर्ति कल्याण राय सुराणा – याची की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल श्री बी. कौशिक को सुना ।

2. प्रत्यर्थी सं. 1 से 4 की ओर से उपस्थित विद्वान् अपर ज्येष्ठ सरकारी अधिवक्ता श्री बी. सोकी तथा प्राइवेट प्रत्यर्थी सं. 5 की ओर से उपस्थित विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री पी. के. तिवारी, जिनकी सहायता विद्वान् अधिवक्ता श्री के. सक्सेना ने की, को भी सुना गया ।

3. याची ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन इस रिट याचिका द्वारा अपनी बोली से संबंधित अधीक्षक इंजीनियर, पासीघाट, पूर्वी सियांग जिला के कार्यालय द्वारा जारी एन. आई. टी. सं. ई. ई. ए./आर. डब्ल्यू. डी. (एस. आई. डी. एफ.)/एन. आई. टी.-23/2105-16/7317 खारिजी को आक्षेपित किया है । यह बोली डार्क और कंबा स्थित 'कांस्ट्रक्शन आफ़ मल्टीपरपज़ वुडन बैडमिंटन कोर्ट्स और 27 लाइरंबा कांस्टीट्यूटेंसी के अधीन संरचनात्मक विकास सहित योमचा और कंबा जनरल ग्राउंड' की दर्शक दीर्घा के निर्माण से संबंधित थी । बोली को इस आधार पर खारिज किया गया है कि याची की तकनीकी बोली अनुकूल नहीं पाई गई है ।

4. याची के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि याची ने ऊपर उल्लिखित निविदा में भाग लेने के लिए अपने बोली दस्तावेज प्रस्तुत किए थे जो हर प्रकार से पूर्ण थे । निविदा के निबंधनों और शर्तों के अनुसार उक्त निविदा की बोलियां अधीक्षक इंजीनियर, आर. डब्ल्यू. डी. (पासीघाट सर्किल), पासीघाट के कार्यालय में तारीख 22 मार्च, 2017 को 2.00 बजे दिन में खोली जानी थीं । यह दलील दी गई है कि निविदा दस्तावेज दो सेटों (समूहों) में पेश किए गए थे जिनमें से एक मूल दस्तावेजों का था तथा दूसरे सेट में फोटो प्रतियां थीं । बोली दस्तावेजों के साथ उन दस्तावेजों की सूची भी थी जो बोली के साथ प्रस्तुत किए गए थे ।

5. यह उपदर्शित किया गया है कि तारीख 22 मार्च, 2017 को जब बोलियां तकनीकी मूल्यांकन के लिए खोली गई थीं तो ऐसे मूल्यांकन के परिणाम के बारे में न तो याची को सूचित किया गया था और न ही अधीक्षक इंजीनियर, पासीघाट, जहां निविदा खोली गई थी, के सूचना बोर्ड पर प्रदर्शित किया गया था । अतः उससे प्रतीक्षा करने के लिए कहा गया और कुछ समय प्रतीक्षा करने के पश्चात् याची अरुणाचल प्रदेश पी. एम. जी. वाई. एस. की पृथक् वित्तीय बोली के संबंध में भाग लेने के लिए अधीक्षक इंजीनियर, पासीघाट के कार्यालय में गया और उसे अधीक्षक इंजीनियर, पासीघाट द्वारा यह सूचना दी गई कि उस निविदा के संबंध में, जिसमें उसने तारीख 22 मार्च, 2017 को भाग लिया था, वित्तीय बोलियां तारीख 29 मार्च, 2017 को 2.00 बजे अपराह्न खोली जाएंगी । तद्नुसार याची तारीख 29 मार्च, 2017 को वित्तीय बोली में भाग लेने के लिए गया था । तथापि, वह तब आश्चर्यचकित हो गया जब उसे कार्यपालक इंजीनियर, आलो डिवीजन द्वारा मौखिक रूप से यह सूचना दी गई कि उसकी तकनीकी बोली उसकी वर्तमान वचनबद्धता का शपथपत्र पेश न करने के कारण तारीख 22 मार्च, 2017 को ही खारिज कर दी गई थी । याची का यह पक्षकथन है कि उसे कभी भी इस बारे में उसकी बोली खारिजी के संबंध में सूचित नहीं किया गया कि उसकी बोली तकनीकी रूप से अनुकूल नहीं थी । तथापि, जब उसने कार्यपालक इंजीनियर से इस बारे में पूछा तो याची को यह सूचना दी गई कि तकनीकी मूल्यांकन के दौरान उसकी बोली की खारिजी के संबंध में उसके आलो डिवीजन के कार्यालय में अधिसूचित कर दिया गया था । यह कहा गया है कि जब बोलियां अधीक्षक इंजीनियर, पासीघाट के कार्यालय में खोली गईं तो आलो स्थित अधीक्षक इंजीनियर के कार्यालय में उसकी बोली की खारिजी की अधिसूचना जारी करना अवैध था और ऐसा याची को न देने के आशय से जानबूझकर किया गया था ।

6. याची के अनुरोध पर तारीख 29 मार्च, 2017 को शपथपत्र प्रस्तुत न करने के आधार पर उसकी बोली की खारिजी के आदेश की प्रति याची को प्रदत्त की गई थी । उक्त खारिजी आदेश से यह उपदर्शित होता है कि उस पर किसी भी कर्मचारी के हस्ताक्षर के साथ तारीख नहीं डाली गई थी और इसलिए यह कहा गया है कि उक्त खारिजी आदेश याची को बोली से बाहर करने के लिए छलसाधन द्वारा जारी किया गया था ।

7. याची के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि यद्यपि यह बात उसके द्वारा स्वीकार नहीं की गई है तथापि, यह उपधारित किया जा सकता है कि शपथपत्र प्रस्तुत करने की अपेक्षा बोली के विशेष निबंधनों और शर्तों तथा बोलीकर्ता अनुदेशों (जिसे संक्षेप में आई. टी. बी. कहा गया है) के खंड 11 में सम्मिलित नहीं थी और इसलिए उक्त शपथपत्र उसकी निविदा के अननुकूलन के विवाद्यक को विनिश्चित करने के लिए किसी भी प्रकार से सुसंगत नहीं थी । इसके अतिरिक्त आई. टी. बी. के खंड 26 का निर्देश करते हुए यह दलील दी गई है कि बोलियों की परीक्षा और अनुकूलन का अवधारण खंड 26.1 में उपबंधित किया गया था जिसके अनुसार यह अपेक्षित था कि नियोजक यह अवधारित करेगा कि क्या प्रत्येक बोली (क) खंड 3 और 4 में परिभाषित पात्रता मानदंड पूरा करती है; (ख) उस पर सम्यक् रूप से हस्ताक्षर किए गए हैं (ग) अपेक्षित प्रतिभूतियां संलग्न की गई हैं और ; (घ) बोली दस्तावेजों की अपेक्षाओं को सारभूत रूप से पूरा किया गया है ।

8. यह दलील दी गई है कि आई. टी. बी. का खंड 23, आई. टी. बी. के खंड 26 से संबंधित है जो बोली को खोलने और उनका मूल्यांकन करने के बारे में उपबंध करता है और यह सुधार के लिए भी उपबंध करता है । अतः यह दलील दी गई है कि यह उपधारित करते हुए जिसे स्वीकार नहीं किया गया है, कि शपथपत्र संलग्न नहीं था, क्या याची को ऐसी कमी के बारे में समय से सूचित किया गया था । इस संबंध में यह भी दलील दी गई है कि उसकी बोली की दूसरे सैट की प्रतियों में जो याची को वापस की गई थीं, शपथपत्र की प्रति उपलब्ध थी और इसलिए यह बात स्वीकार किए जाने योग्य नहीं है कि मूल दस्तावेज बोली दस्तावेजों के साथ असल शपथपत्र संलग्न नहीं था । यह भी दलील दी गई है कि उपलब्ध मूल बोली की प्रति संलग्न उक्त शपथपत्र का सत्यापन तारीख 15 मार्च, 2017 को किया गया था और इसलिए यह असंभव था कि याची द्वारा पेश की गई बोली के साथ ऐसा कोई शपथपत्र संलग्न न हो ।

9. याची के विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी है कि याची को यह आशंका है कि वित्तीय बोलियों को खोलने के पश्चात् यह पाया गया कि याची द्वारा पेश की गई बोली निम्नतर थी इसलिए उसकी बोली के साथ छलसाधन किया गया था और उसके पश्चात् ही प्राधिकारियों ने यह उपदर्शित करते हुए उसकी बोली को खारिज किया था कि मानो तारीख 22 मार्च, 2017 को उसकी बोली सही नहीं पाई गई थी और तद्द्वारा

मनमाने रूप में और असद्भाविक रीति में केवल प्रत्यर्थी सं. 5 का चयन किया गया जिसके कारण प्राधिकारियों ने पासीघाट में संबंधित अधीक्षण इंजीनियर के कार्यालय में उसकी बोली की खारिजी को दर्शित नहीं किया और यह उपदर्शित किया कि मानो याची की बोली की खारिजी को कार्यपालक इंजीनियर, आलो के कार्यालय में प्रचालित किया गया था ।

10. याची के विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी कि वर्तमान रिट याचिका में इस आधार पर आक्षेप किया गया है कि याची द्वारा पेश की गई बोली अवैध रूप से खारिज की गई है और जब उसने प्राधिकारियों से सम्पर्क किया तो उन्होंने उसे यह आश्वासन दिया था कि वे उसकी शिकायत पर विचार करेंगे और इसलिए वह इस न्यायालय में समावेदन करने से पूर्व युक्तियुक्त समय तक प्रतीक्षा करता रहा था और इसलिए जब याची सहित अन्य की खारिजी द्वारा दूषित प्रत्यर्थी सं. 5 के चयन की प्रक्रिया हो गई थी तब यह न्यायालय समस्त प्रक्रिया को अपास्त करने और वर्तमान याचिका में किए गए अनुरोध के निबंधनों में रिट याची को अनुतोष प्रदान करने के लिए बाध्य नहीं था । इसके अतिरिक्त यह दलील दी गई है कि यथा अभिकथित शपथपत्र का न होना निविदा का जवाब न देने के लिए उसकी बोली की गुणवत्ता को तात्विक रूप से प्रभावित नहीं करेगा क्योंकि यह कमी आई. टी. बी. के खंड 23 के अधीन दूर किए जाने योग्य है ।

11. याची के विद्वान् काउंसेल ने इस रिट याचिका में यथा प्रार्थना किए गए अनुतोष की मंजूरी के लिए अनुरोध किया है । याची के विद्वान् काउंसेल ने अपनी दलील के समर्थन में (i) **मैसर्स पोद्दार स्टील कारपोरेशन** बनाम **मैसर्स गणेश इंजीनियरिंग वर्क्स और अन्य**[1], (ii) **ब्रहमपुत्र कनसोरटियम लिमिटेड और एक अन्य** बनाम **स्टेट आफ असम और अन्य**[2] वाले मामलों का अवलंब लिया है ।

12. विद्वान् अपर ज्येष्ठ सरकारी अधिवक्ता ने बोली दस्तावेजों का निर्देश करते हुए यह दलील दी है कि तकनीकी बोली की खारिजी उस प्राधिकारी के कार्यालय में अधिसूचित की गई थी जिसने निविदा आमंत्रित की थी अर्थात् कार्यपालक इंजीनियर ग्रामीण कार्य खंड, आलो के

---

[1] ए. आई. आर. 1991 एस. सी. 1579 = (1991) 3 एस. सी. सी. 273.

[2] 2007 (4) जी. एल. टी. 236.

कार्यालय में और ऐसा केवल इस कारण किया गया था कि अधीक्षण इंजीनियर का कार्यालय पासीघाट में स्थित था और उक्त एन. आई. टी. से संबंधित तकनीकी बोली पासीघाट में ही खोली गई थी तथापि, यह बात कार्यपालक इंजीनियर, आलो के कार्यालय में तकनीकी बोली के परिणाम को अधिसूचित करने से राज्य प्रत्यर्थियों को विमुक्त नहीं कर सकती । इसके अतिरिक्त यह दलील दी गई है कि वर्तमान रिट याचिका के अनुसार याची का कार्यालय भी आलो में स्थित है और इसलिए याची के लिए यह आवश्यक नहीं था कि वह अपनी बोली के संबंध में जानकारी के लिए कार्यपालक इंजीनियर, आलो के कार्यालय में जाता ।

13. यह भी दलील दी गई है कि प्रश्नगत शपथपत्र देना जिला आधारित इंटर प्रिन्योर एंड प्रोफेशनल्स (इनसेटिव, डवलपमेंट और प्रमोशन), अधिनियम, 2015 के निबंधनों में आवश्यक था जिसमें यह विहित किया गया है कि बोलीकर्ता बोली के लिए तभी पात्र होगा जब सुसंगत समय पर उसके पास दो से अनधिक कार्य होंगे । इसलिए यह दलील दी गई है कि उक्त शपथपत्र बोलियों के तकनीकी जवाब का मूल्यांकन करने के लिए आवश्यक भाग के रूप में था और इसलिए सम्पूर्ण बोली दस्तावेजों को तकनीकी उत्तर और तकनीकी बोली के प्रयोजन के लिए पृथक् रूप से बोली दस्तावेजों के विखंडन के बिना सम्पूर्णतः पढ़ा जाना चाहिए ।

14. विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता ने रिट याचिका के उपाबंध 13 जो बोली दस्तावेज के लिए सूची है, का निर्देश करते हुए यह दलील दी है कि याची के सूची प्ररूप के जो क्रम सं. 27 पर है, और जो शपथपत्र के संबंध में है, विरुद्ध यह उपदर्शित है कि फर्म ने अरुणाचल प्रदेश के किसी सरकारी विभाग में दो से अधिक कार्य अपने हाथ में नहीं लिए हैं, इस पर एक्स चिह्न द्वारा हस्ताक्षर किए गए हैं और उक्त सूची पर तारीख 22 मार्च, 2017 को यह उपदर्शित करते हुए एक कर्मचारी द्वारा हस्ताक्षर किए गए हैं कि दस्तावेजों की तारीख 22 मार्च, 2017 को जांच की गई थी और संबंधित अधिकारी द्वारा शपथपत्र अभिलेख पर नहीं पाया गया था । अप्रैल, 2018 का एक प्रगति टिप्पण पेश करते हुए यह दलील दी गई है कि इसमें उपदर्शित 14 पृथक् कार्यों में से प्रत्यर्थी सं. 5 ने मद सं. 9 के संबंध में ऐसे कार्यों को सौ प्रतिशत पूरा किया है और शेष पांच मदों में कार्य की प्रगति क्रमश: 45 प्रतिशत, 75 प्रतिशत, 45 प्रतिशत, 85 प्रतिशत और 75 प्रतिशत थी और इसलिए कार्य की सारभूत प्रगति के आधार पर यह लोक हित में सही नहीं होगा कि करार/एन. आई. टी. की त्वरित संविदा में

जिसका कार्य पूरा होने के करीब था, हस्तक्षेप किया जाए । विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने अपनी दलील के समर्थन में इस न्यायालय द्वारा **मैसर्स तामची कुसूक** बनाम **अरुणाचल प्रदेश राज्य और अन्य**[1] वाले मामले का निर्देश किया है ।

15. प्रत्यर्थी सं. 5 के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने यह दलील दी है कि वर्तमान मामले में तकनीकी बोली तारीख 22 मार्च, 2017 को खोली गई थी और वित्तीय बोली तारीख 29 मार्च, 2017 को खोली गई थी तथा बोली को स्वीकार करने से संबंधित पत्र तारीख 26 जून, 2017 को जारी किया गया था । इसके पश्चात् करार की संविदा पर तारीख 4 अगस्त, 2017 को हस्ताक्षर किए गए थे और प्राधिकारियों ने इसी तारीख को प्रत्यर्थी सं. 5 को कार्य आरंभ करने के लिए सूचना जारी की थी । अप्रैल, 2018 को की गई प्रगति का निर्देश करते हुए यह दलील दी गई है कि उस समय तक प्रत्यर्थी सं. 5 द्वारा सारभूत कार्य पूरा कर दिया गया था और समय-समय पर कार्य के संबंध में कुछ भुगतान भी कर दिए गए थे ।

16. यह दलील दी गई है कि चूंकि रिट याचिका तारीख 3 अक्तूबर, 2017 को अर्थात् लगभग 7 मास के पश्चात् फाइल की गई थी इसलिए केवल विलंब के आधार पर ही रिट याचिका खारिज किए जाने योग्य थी ।

17. यह भी दलील दी गई है कि वर्तमान मामले में सारभूत कार्य किए जाने के पश्चात् निविदा को अपास्त करना लोक हित में नहीं होगा क्योंकि इससे न केवल कार्य रुक जाएगा अपितु अगली बोली प्रक्रिया भी पर्याप्त समय तक आरंभ नहीं की जा सकेगी और इसलिए इससे स्पष्ट रूप से अत्यधिक खर्चा बढ़ जाएगा और इसलिए लोक हित प्रभावित होगा और स्थानीय नागरिकों को किए गए लोक कार्यों का फायदा नहीं मिलेगा जबकि लोक कोष द्वारा अत्यधिक खर्चा किया जा चुका होगा । इस मुद्दे को साबित करने के लिए कि लोक हित प्रभावित होगा, और न्यायालय को निविदा प्रक्रिया में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए, प्रत्यर्थी सं. 5 के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने **संजय कुमार शुक्ला** बनाम **भारत पैट्रोलियम कारपोरेशन लिमिटेड और अन्य**[2] और **मां बिन्दा एक्सप्रेस कैरियर और एक अन्य** बनाम **नार्थ ईस्ट फ्रंटियर रेलवे और अन्य**[3] वाले मामलों का

---

[1] 2017 की रिट याचिका (सिविल) सं. 203, तारीख 21 जून, 2017 को विनिश्चित ।

[2] ए. आई. आर. 2014 एस. सी. 3779 = (2014) 3 एस. सी. सी. 493.

[3] ए. आई. आर. 2014 एस. सी. 390 = (2014) 3 एस. सी. सी. 760.

निर्देश किया है ।

18. विद्वान् ज्येष्ठ अपर अधिवक्ता ने भी उस निविदा दस्तावेज को पेश किया है जो हमारे समक्ष के याची ने प्रस्तुत किया था । याची के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल द्वारा यह दलील दी गई है कि याची द्वारा यथा पेश किए गए बोली दस्तावेजों की सूची के संबंध में क्रम सं. 22 से 32 के अधीन मदों पर सही का निशान लगाया गया था तथापि, इसमें शपथपत्र सम्मिलित नहीं था । यह दलील दी गई है कि शपथपत्र द्वारा यह अपेक्षा की गई थी कि याची के पास अरुणाचल प्रदेश के सरकारी विभाग में 2 से अधिक संविदाएं लंबित नहीं हैं और यह बात वर्तमान स्वीकृति की क्रम सं. 27 के अधीन पेश किया जाना अपेक्षित है । विद्वान् अपर ज्येष्ठ अधिवक्ता द्वारा पेश किए गए मूल बोली दस्तावेजों और रिट याची द्वारा उपाबद्ध किए गए बोली दस्तावेजों की तुलना करने पर यह उपदर्शित होता है कि वर्तमान रिट याचिका में दस्तावेज पूर्ण रूप से वही दस्तावेज नहीं हैं जो मूल बोली दस्तावेजों में उपलब्ध हैं । अत: रिट याची द्वारा रिट याचिका में उपाबद्ध किए गए दस्तावेजों की बोली में प्रस्तुत दस्तावेज़ों से तुलना करने पर किसी दस्तावेज के अभाव में यह न्यायालय इस बारे में निश्चित निष्कर्ष निकालने में असमर्थ है कि क्या याची द्वारा अभिकथित दस्तावेज बोली दस्तावेजों के साथ पेश किया गया था या नहीं । पेश किए गए मूल बोली दस्तावेजों के साथ उस दस्तावेज से जिसे विद्यमान स्वीकृतियों की क्रम सं. 27 पर एक दस्तावेज से संबद्ध कहा जा सकता है, यह उपदर्शित होता है कि याची ने तारीख 15 मार्च, 2007 के पत्र के रूप में लिखित में एक पत्र प्रस्तुत किया था जो इस रिट याचिका के पृष्ठ 118 पर है और जो कार्य निर्माण के संबंध में विद्यमान स्वीकृतियों के निर्देश में है । अत: जैसाकि ऊपर उल्लेख किया गया है कि इस रिट याचिका में उपाबद्ध दस्तावेजों के साथ मूल बोली दस्तावेजों के साथ संलग्न दस्तावेजों की शृंखला से तुलना करने पर किसी दस्तावेज के अभाव में यह न्यायालय इस बारे में निष्कर्ष देने की स्थिति में नहीं है कि क्या याची द्वारा अरुणाचल प्रदेश के सरकारी विभाग में दो कार्यों से अधिक धारित करने के संबंध में कोई शपथपत्र अपने बोली दस्तावेजों के साथ पेश किया गया था या नहीं ।

19. अतः दूसरा विवाद्यक जिस पर विचार किए जाने की आवश्यकता है, यह है कि क्या बोली के साथ शपथपत्र का प्रस्तुत न करना, याची द्वारा पेश की गई बोली के लिए घातक हो सकता है । इस संबंध में यह उपदर्शित है कि आई. टी. बी. के खंड 26 में मानक बोली दस्तावेजों के

बारे में यह उपबंधित है कि बोली के पात्रता मानदंड को पूरा किया जाना चाहिए जैसा कि आई. टी. बी. के खंड 3 और 4 में परिभाषित है और इसलिए आई. टी. बी. ने मानक बोली संबंधी पात्रता के लिए और बोलीकर्ता की अर्हताओं के लिए उपबंध किया है । इस संबंध में विद्वान् ज्येष्ठ सरकारी अधिवक्ता ने यह दलील दी है कि जिला बेस्ड इंटरप्रिन्यूर एंड प्रोफेशनल (इनसेंटिव, डेवलपमेंट एंड प्रमोशन) अधिनियम, 2015 की यह अपेक्षा है कि ऐसा कोई निविदा करने वाला निविदा प्रक्रिया में भाग लेने का पात्र नहीं होगा यदि उसने अरुणाचल प्रदेश राज्य के भीतर किसी सरकारी विभाग में 2 विद्यमान स्वीकृति कार्य धारित कर रखे हैं । तथापि, उक्त शपथपत्र जो उक्त अधिनियम, 2015 के अधीन प्रस्तुत किया जाना अपेक्षित है, आई. टी. बी. के खंड 3 और 4 में बोलीकर्ता की पात्रता या अर्हता के एक आधार के रूप में उपबंधित नहीं किया गया है ।

20. इस न्यायालय की राय में आई. टी. बी. का खंड 3.1 का उक्त उपबंध यह उपबंधित करता है कि बोलियों का आमंत्रण ऐसे सभी व्यक्तियों के लिए था जो रिट याचिका के पृष्ठ सं. 164 पर उल्लिखित आई. टी. बी. से संबद्ध पात्रता मानदंड पूरा करते हैं । उक्त सूची में शपथपत्र का उल्लेख नहीं है । अतः न्यायालय इस आधार पर याची की बोली की खारिजी को न्यायोचित नहीं मान सकता कि शपथपत्र उपलब्ध नहीं था क्योंकि यह न्यायालय याची की इस दलील को स्वीकार करता है कि तकनीकी मूल्यांकन के प्रयोजन के लिए याची की बोली वर्तमान मामले में उक्त शपथपत्र के आधार पर खारिज नहीं की जा सकती । इस न्यायालय का यह मत है कि शपथपत्र का अभाव केवल एक सुधार्य कमी थी और इसे आई. टी. बी. के खंड 23 के अधीन सुधारा जा सकता है । इसके अतिरिक्त जैसा कि ऊपर निर्देश किया गया है कि आई. टी. बी. का परिशिष्ट यह उपबंधित करता है कि बोली आर. डब्ल्यू. डी., पासीघाट के अधीक्षण इंजीनियर के कार्यालय में खोली जानी थी और इसलिए यह न्यायालय विद्वान् ज्येष्ठ सरकारी अधिवक्ता द्वारा दी गई इस दलील को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है कि याची की बोली की खारिजी की सूचना देने में कोई दोष नहीं था क्योंकि खारिजी कार्यपालक इंजीनियर, आलो के कार्यालय में अधिसूचित कर दी गई थी ।

21. इस संबंध में प्रत्यर्थी सं. 4 द्वारा विरोध स्वरूप फाइल किए गए शपथपत्र के पैरा 5 का निर्देश करना सुसंगत होगा जिसमें यह कहा गया है

बोली के खोलने और तकनीकी बोली के मूल्यांकन के बारे में आलो के खंड कार्यालय में प्रदर्शित किया गया था जबकि इस शपथपत्र के पैरा 7 में आधार लेते हुए यह उल्लेख किया गया था कि तकनीकी बोली मूल्यांकन आलो के खंड कार्यालय और पासीघाट के सर्किल कार्यालय में प्रदर्शित कर दिया गया था । अत: प्रत्यर्थी सं. 4 द्वारा विरोध में फाइल किए गए उक्त शपथपत्र के पैरा 5 में किए गए कथन के आधार पर खंड कार्यालय में याची की बोली की खारिजी का प्रकट किया जाना अवैध माना जाएगा क्योंकि इसे आई. टी. बी. के परिशिष्ट (रिट याचिका के पृष्ठ 164) के अनुसार पासीघाट स्थित अधीक्षण इंजीनियर के कार्यालय में अधिसूचित किया जाना अवैध है क्योंकि सूचना उस स्थान पर दिया जाना अपेक्षित है जहां निविदा खोली गई है ।

22. यह बात दूसरे प्रश्न को उद्भूत करती है जिसे प्रत्यर्थी सं. 5 के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल तथा विद्वान् राज्य काउंसेल द्वारा उठाया गया है और वह यह है कि क्या इस प्रक्रम पर जब प्रत्यर्थी सं. 5 द्वारा पर्याप्त कार्य किया जा चुका है और जब परियोजना पूरी होने के निकट है, निविदा में हस्तक्षेप किया जा सकता है । इस तथ्य पर विचार करते हुए कि सरकारी कोष की लागत से पर्याप्त कार्य किया जा चुका है, इस न्यायालय का यह मत है कि वर्तमान मामले में जहां परियोजना पूरी होने के निकट है, प्राइवेट प्रत्यर्थी सं. 5 द्वारा प्रश्नगत कार्य को पूरा करने में ही लोक हित है क्योंकि परियोजना पर अत्यधिक लोक धन खर्च किया जा चुका है और लाभदायक संविदा कार्य लोक प्रयोजन के उपयोग के लिए तैयार होने की संभावना है । अत: इस मामले में लोक हित के साथ-साथ वाणिज्यिक अन्तर्वलन को देखते हुए इस न्यायालय का यह मत है कि इस आधार पर कि उसकी बोली तकनीकी रूप से उत्तर देने वाली नहीं पाई गई थी, याची की बोली की खारिजी में हस्तक्षेप करना उचित नहीं है और इसलिए यह न्यायालय याची द्वारा इस न्यायालय में असाधारण विलंब से समावेदन करने के कारण इस प्रक्रम पर प्राइवेट प्रत्यर्थी सं. 5 को आबंटित कार्य में हस्तक्षेप करने के लिए तैयार नहीं है क्योंकि यह स्पष्ट है कि याची इस बात से अवगत था कि उसकी बोली तारीख 29 मार्च, 2017 को खारिज कर दी गई थी और उसके बावजूद उसने देरी से अर्थात् तारीख 7 अक्तूबर, 2017 को इस न्यायालय में समावेदन किया था ।

23. तथापि, यह आदेश याची के लिए उसकी बोली की अवैध खारिजी के लिए उसे पहुंचे नुकसान के लिए राज्य के विरुद्ध कार्यवाही

करने से निवारित नहीं करेगा क्योंकि इस न्यायालय का यह निश्चित मत है कि याची की बोली की खारिजी के लिए शपथपत्र का अभाव एक बेहतर या युक्तियुक्त आधार नहीं था क्योंकि प्रश्नगत शपथपत्र का अभाव बोलीकर्ता के निदेशों (आई. टी. बी.) के खंड 23 के अर्थान्तर्गत सुधार्य है ।

24. ऊपर उल्लिखित निष्कर्ष को दृष्टिगत करते हुए यह न्यायालय यह उचित नहीं समझता कि पक्षकारों के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेलों द्वारा उद्धृत विभिन्न नजीरों की चर्चा की जाए जो कि इस मामले से भिन्न प्रकृति के हैं ।

25. अतः उपर्युक्त चर्चा को दृष्टिगत करते हुए यह रिट याचिका भागत: सफल होती है और यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि याची द्वारा समुचित रूप से उत्तर न दिए जाने के आधार पर बोली की खारिजी का आदेश कायम रखे जाने योग्य नहीं है । तथापि, कार्य की पर्याप्त प्रगति को दृष्टिगत करते हुए यह न्यायालय केवल विलंब के कारण याची को कोई अनुतोष मंजूर करने के लिए तैयार नहीं है । तथापि, राज्य के विरुद्ध किसी समुचित न्यायालय में नुकसानी और/या प्रतिकर का दावा करने के लिए, यदि वह ऐसा चाहता है, स्वतंत्र है ।

26. विद्वान् ज्येष्ठ सरकारी अधिवक्ता द्वारा पेश किया गया अभिलेख एतद्द्वारा वापस किया जाता है । तथापि, अप्रैल, 2018 तक किए गए प्रश्नगत कार्य का प्रगति-पत्रक अभिलेख के भाग के रूप में फाइल पर रखा जाएगा ।

याचिका भागतः मंजूर की गई ।

मह.

राजेन्द्र कुमार झा

बनाम

मनोहर लाल सोनी और अन्य

तारीख 22 जनवरी, 2018

न्यायमूर्ति मनिन्दर मोहन श्रीवास्तव

विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 (1963 का 47) – धारा 20 [सपठित संपत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882 की धारा 54] – विक्रय करार – विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए वाद – करार इस शर्त के अध्यधीन किया जाना कि विक्रेता परिसर को अपने किराएदार से खाली कराकर विक्रय विलेख निष्पादित करेगा – वैवेकिक अनुतोष – न्यायालय मात्र करार के निष्पादन के आधार पर विनिर्दिष्ट अनुतोष की डिक्री पारित करने के लिए बाध्य नहीं है – तथापि, प्रतिवादी क्रेता ब्याज सहित मूल धनराशि वापस पाने का हक़दार है ।

मृतक मूल प्रत्यर्थी/वादी मनोहर लाल सोनी ने एक वाद फाइल किया था जिसमें उसने यह अभिवचन करते हुए संविदा के विनिर्दिष्ट अनुपालन की डिक्री के लिए अनुरोध किया था कि अपीलार्थी/प्रतिवादी राजेन्द्र कुमार झा ने अपने उस मकान को विक्रीत करने के लिए एक करार किया था जो 1034 वर्ग फुट माप की भूमि में बना हुआ है और जो जगदलपुर में खसरा सं. 124/1 के पत्रक सं. 92 पर स्थित है । यह करार तारीख 14 मार्च, 1981 को किया गया था । यह भी अभिवचन किया गया है कि पक्षकार 25,000/- रुपए के प्रतिफल के लिए सहमत हुए थे जिसमें से 2,000/- रुपए की धनराशि अग्रिम रूप में संदत्त की गई थी । यह भी अभिवचन किए गए हैं कि वादी ने तारीख 24 अप्रैल, 1981 को प्रतिवादी को दो चैक दिए थे जिनमें से एक चैक दस हजार रुपए का था और दूसरा पांच हजार रुपए का था, जिन्हें भुना लिया गया था । वादी के अनुसार 2,000/- रुपए प्रतिवादी को तारीख 7 सितंबर, 1981 को स्टाम्प क्रय करने के लिए दिए गए थे । जब प्रतिवादी विक्रय विलेख का निष्पादन करने के लिए तैयार नहीं हुआ तो आरंभतः अधिवक्ता के जरिए तारीख 3 जून, 1989 को एक विधिक सूचना भेजी गई थी और इसके पश्चात् वादी ने स्वयं भी तारीख 21 जून, 1989 को एक सूचना प्रेषित की थी । इसके

पश्चात् वाद फाइल किया गया था । पक्षकारों के अभिवचनों के आधार पर विद्वान् विचारण न्यायालय ने विभिन्न विवाद्यक विरचित किए । वाद में दो अतिरिक्त विवाद्यक अर्थात् विवाद्यक सं. 6-क और 6-ख भी विरचित किए गए थे । इस विवाद्यक पर कि क्या कोई करार किया गया था, विद्वान् विचारण न्यायालय ने सकारात्मक रूप में यह निष्कर्ष अभिलिखित किया कि पक्षकारों के बीच विवादित संपत्ति के विक्रय के लिए एक करार हुआ था और इसलिए वादी ने वादग्रस्त मकान के क्रय के संबंध में तारीख 14 मार्च, 1981 से तारीख 7 सितंबर, 1981 की अवधि के बीच समय-समय पर प्रतिवादी को विभिन्न धनराशियां संदत्त की थीं । प्रतिवादी के पक्षकथन और उससे संबंधित इस विवाद्यक पर कि क्या कोई ऋण संव्यवहार हुआ था, नकारात्मक उत्तर दिया गया था । विद्वान् विचारण न्यायालय ने यह भी अभिलिखित किया कि प्रतिवादी करार को पूरा करने के लिए और विक्रय विलेख निष्पादित करने के लिए आबद्ध था । इन निष्कर्षों के साथ वादी का वाद डिक्री किया गया था । इस अपील में इसी डिक्री को आक्षेपित किया गया है । अपील में तद्नुसार आदेश पारित करते हुए,

अभिनिर्धारित – वादी ने अपने वादपत्र में स्पष्ट रूप से यह अभिवाक् किया है कि तारीख 14 मार्च, 1981 को पक्षकारों के बीच पत्रक सं. 92, खसरा सं. 124/1 में स्थित मकान के जो जगदलपुर में 1034 वर्ग फुट माप की भूमि में बना हुआ है, विक्रय के लिए एक करार हुआ था । वादपत्र में 2,000/- रुपए के संदाय के संबंध में और बाद में 10,000/- रुपए और 5,000/- रुपए के दो चैकों के संबंध में तथा तारीख 7 सितंबर, 1981 को 2,000/- रुपए के एक अन्य संदाय के संबंध में विनिर्दिष्ट अभिवचन किए गए हैं । प्रतिवादी ने इन धनराशियों की प्राप्ति से इनकार नहीं किया है तथापि, उसने यह अभिवाक् किया है कि ये धनराशियां ऋण के संबंध में स्वीकार की गई थीं न कि पक्षकारों के बीच किसी विक्रय करार के अधीन । वादी-प्रत्यर्थी ने अपने पक्षकथन को साबित करने के लिए दो साक्षियों की परीक्षा कराई है । वादी पी. डब्ल्यू.-2 के रूप में स्वयं पेश हुआ है । उसने अपने साक्ष्य में यह अभिसाक्ष्य दिया है कि तारीख 14 मार्च, 1981 को पक्षकारों के बीच 25,000/- रुपए के प्रतिफल के लिए प्रतिवादी के मकान को क्रय करने के संबंध में करार हुआ था और उस तारीख को प्रतिवादी को 2,000/- रुपए नकद संदत्त किए गए थे । इस संबंध में रसीद (प्रदर्श पी-3) भी फाइल की गई है । उसने यह भी अभिसाक्ष्य दिया है कि मकान मुरली मनोहर नामक व्यक्ति के अधिभोग में है जो किराएदार है । इस

साक्षी के अनुसार उसने 5,000/- रुपए और 10,000/- रुपए के दो चैक दिए थे और तत्पश्चात् 2,000/- रुपए दिए थे । 10,000/- रुपए और 5,000/- रुपए का चैक देने की रसीद प्रदर्श पी-4 के रूप में फाइल की गई है जिसमें 2,000/- रुपए की नकद प्राप्ति की स्वीकृति भी सम्मिलित है । वादी ने प्रतिवादी द्वारा प्रदर्श पी-7 में की गई लिखित घोषणा का भी अवलंब लिया है जो उस संव्यवहार के साक्ष्य के रूप में है कि पक्षकारों के बीच करार किया गया था । इस साक्षी की विस्तार से प्रतिपरीक्षा की गई है, तथापि, उसकी प्रतिपरीक्षा में कोई भी तात्विक बात नहीं निकली है । प्रतिवादी का यह अभिवचन है कि उसने उस समय ऋण के संदाय के संबंध में प्रतिभूति के रूप में विभिन्न दस्तावेज निष्पादित किए थे जब उसके पिता गंभीर रूप से बीमार थे, जिसे स्वीकार नहीं किया जा सकता और यह बात इस समवर्ती, प्रबल और विश्वसनीय तथा दस्तावेजी साक्ष्य के विरुद्ध विश्वास किए जाने योग्य नहीं है कि पक्षकारों के बीच विक्रय करार नहीं हुआ था और वादी द्वारा प्रतिवादी को तारीख 14 मार्च, 1981 से तारीख 7 सितंबर, 1981 की अवधि के बीच विभिन्न धनराशियों का संदाय नहीं किया गया था । अतः इस संबंध में विद्वान् विचारण न्यायालय के निष्कर्ष की पुष्टि की जाती है । अतः स्वयं वादी के अभिवचनों और साक्ष्य से यह स्पष्ट होता है कि पक्षकारों के बीच यह करार किया गया था कि प्रतिवादी किराएदार की बेदखली के पश्चात् वादी के हक में विक्रय विलेख का निष्पादन करेगा । प्रतिवादी द्वारा प्रदर्श पी-7 में की गई घोषणा में किए गए उल्लेख से भी यह स्पष्ट होता है कि वादी द्वारा निष्पादन के संबंध में विवाद नहीं किया गया है । अतः यह स्पष्ट है कि विवादित संपत्ति के विक्रय करार के अधीन विक्रय विलेख का निष्पादन किराएदार की बेदखली के पश्चात् होना था । वादी द्वारा यह साबित करने के लिए कोई अभिवचन और साक्ष्य पेश नहीं किया गया है कि वाद फाइल करने की तारीख (जो तारीख 5 सितंबर, 1989 को फाइल किया गया) से पूर्व या वाद के लंबन के दौरान या विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा डिक्री पारित किए जाने के समय किराएदार की बेदखली हो चुकी थी जिससे कि यह कहा जा सके कि पक्षकारों के बीच विक्रय करार विधि में प्रवर्तनीय बन गया था । जहां तक विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 20 में उल्लिखित उपबंध के आधार पर दी गई दलील का संबंध है, उच्चतम न्यायालय द्वारा अधिकथित नज़ीरें आबद्धकर नहीं हैं क्योंकि न्यायालय पक्षकारों के बीच विक्रय करार के निष्पादन के सबूत के आधार पर विनिर्दिष्ट अनुतोष की डिक्री मंजूर

करने के लिए आबद्ध नहीं है । विवेकाधिकार के प्रयोग के लिए सुसंगत विचारणा पर न्यायालय द्वारा ऐसी डिक्री मंजूर किए जाने के पूर्व परीक्षा किए जाने की आवश्यकता होगी । जयाकंदम वाले मामले के एक अद्यतन विनिश्चय में अनुतोष मंजूर करने के लिए या विनिर्दिष्ट अनुतोष की डिक्री मंजूर करने या न करने के लिए विवेकाधिकार के प्रयोग के मामले में सुसंगत विचारणा और लागू सिद्धांतों पर पूर्व निर्णयों की परीक्षा करके यह अभिनिर्धारित करने के लिए पुनः विचार किया गया था कि न्यायालय मात्र इस कारण विनिर्दिष्ट अनुपालन का अनुतोष मंजूर करने के लिए आबद्ध नहीं है कि यह विधिपूर्ण रूप से किया गया है और विनिर्दिष्ट अनुपालन की डिक्री के लिए अधिकारिता का प्रयोग करने के लिए पुख्ता और युक्तियुक्त सिद्धांत मौजूद हैं और समुचित मामलों में भी यदि यह विधिपूर्ण है तो भी न्यायालय विनिर्दिष्ट अनुपालन की डिक्री मंजूर करने से इनकार कर सकता है और पक्षकारों के बीच संतुलन बनाने के लिए साम्यापूर्ण रूप में वादी द्वारा प्रतिवादी को कतिपय ब्याज के साथ ऋण का संदाय करने के लिए निदेश दे सकता है । किसी भी दृष्टि से विचार करते हुए विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री को कायम नहीं रखा जा सकता । अत: यह अपील मंजूर की जाती है तथा आक्षेपित निर्णय और डिक्री को अपास्त किया जाता है । वादी द्वारा तारीख 14 मार्च, 1981 से तारीख 7 सितंबर, 1981 की अवधि के बीच प्रतिवादी को संदत्त 19,000/- रुपए की धनराशि प्रतिवादी द्वारा 3 मास की अवधि के भीतर 6 प्रतिशत वार्षिक साधारण ब्याज के साथ वादी को वापिस की जाएगी । यदि इस प्रकार निदेश की गई धनराशि संदत्त नहीं की जाती है तो वादी उक्त धनराशि की वसूली के लिए विधि के अनुसार डिक्री के निष्पादन के लिए अनुरोध कर सकता है । (पैरा 9, 12, 13, 16, 20 और 21)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2017]	(2017) 5 एस. सी. सी. 178 : **जयाकंदम और अन्य** बनाम **अभय कुमार ;**	5, 20
[2015]	ए. आई. आर. 2015 एस. सी. 3796 : **नंदकिशोर लालभाई मेहता** बनाम **न्यू इरा फेबरिक्स प्राइवेट लिमिटेड और अन्य ;**	5, 13
[2015]	(2015) 14 एस. सी. सी. 341 : **नंजप्पन** बनाम **रामासामी और एक अन्य ;**	5

[2011]	ए. आई. आर. 2011 एस. सी. 3234 = (2011) 12 एस. सी. सी. 18 : **शारदामणि कंदप्पन एस.** बनाम **राजलक्ष्मी और अन्य ;**	5, 19
[2004]	ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 636 = (2003) 4 एस. सी. सी. 86 : **एम. वी. शंकर भट्ट और एक अन्य** बनाम **किलाऊडे पिंटो (मृतक) द्वारा विधिक प्रतिनिधि और अन्य ;**	5, 17
[2003]	ए. आई. आर. 2003 एस. सी. 1391 = (2003) 10 एस. सी. सी. 390 : **मंजू नाथ आनन्दप्पा यू. आर. एफ. शिवप्पा हांसी** बनाम **तम्मानासा और अन्य ।**	5, 18

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 1992 की प्रथम अपील सं. 215.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 96 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से	श्री वरुण शर्मा
प्रत्यर्थियों की ओर से	सर्वश्री चन्द्रदीप प्रसाद और प्रदीप राजगिर

न्यायमूर्ति मनिन्दर मोहन श्रीवास्तव – सुना गया । यह अपील जिला न्यायाधीश, बस्तर के न्यायालय के विद्वान् द्वितीय अपर जिला न्यायाधीश द्वारा 1989 के सिविल वाद सं. 5-ए में तारीख 10 दिसंबर, 1992 को पारित उस निर्णय और डिक्री के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा विद्वान् विचारण न्यायालय ने वादपत्र में यथा उल्लिखित विवादित मकान के संबंध में पक्षकारों के बीच निष्पादित विक्रय करार के विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए वादी के वाद को डिक्री किया है ।

2. मृतक मूल प्रत्यर्थी/वादी मनोहर लाल सोनी ने एक वाद फाइल किया था जिसमें उसने यह अभिवचन करते हुए संविदा के विनिर्दिष्ट अनुपालन की डिक्री के लिए अनुरोध किया था कि अपीलार्थी/प्रतिवादी राजेन्द्र कुमार झा (हमारे समक्ष के अपीलार्थी) ने अपने उस मकान को विक्रीत करने के लिए एक करार किया था जो 1034 वर्ग फुट माप की भूमि में बना हुआ है और जो जगदलपुर में खसरा सं. 124/1 के पत्रक सं.

92 पर स्थित है । यह करार तारीख 14 मार्च, 1981 को किया गया था । यह भी अभिवचन किया गया है कि पक्षकार 25,000/- रुपए के प्रतिफल के लिए सहमत हुए थे जिसमें से 2,000/- रुपए की धनराशि अग्रिम रूप में संदत्त की गई थी । यह भी अभिवचन किए गए हैं कि वादी ने तारीख 24 अप्रैल, 1981 को प्रतिवादी को दो चैक दिए थे जिनमें से एक चैक दस हजार रुपए का था और दूसरा पांच हजार रुपए का था, जिन्हें भुना लिया गया था । वादी के अनुसार 2,000/- रुपए प्रतिवादी को तारीख 7 सितंबर, 1981 को स्टाम्प क्रय करने के लिए दिए गए थे । जब प्रतिवादी विक्रय विलेख का निष्पादन करने के लिए तैयार नहीं हुआ तो आरंभतः अधिवक्ता के जरिए तारीख 3 जून, 1989 को एक विधिक सूचना भेजी गई थी और इसके पश्चात् वादी ने स्वयं भी तारीख 21 जून, 1989 को एक सूचना प्रेषित की थी । इसके पश्चात् वाद फाइल किया गया था ।

3. तथापि,, अपीलार्थी-प्रतिवादी ने पक्षकारों के बीच किसी करार की विद्यमानता से इनकार किया और यह अभिवचन किया कि यह एक ऋण संव्यवहार था । प्रतिवादी के अनुसार प्रतिवादी के पिता ने अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए ऋण की मांग की थी और इसलिए नगद ऋण दिया गया था । प्रतिवादी के अनुसार वादी द्वारा दिए गए ऋण की शृंखला में ही समय-समय पर विभिन्न धनराशियां दी गई थीं और संपत्ति के विक्रय के लिए कोई करार नहीं किया गया था । प्रतिवादी ने इस बात से भी इनकार किया है कि स्टाम्प क्रय करने के प्रयोजन के लिए कोई धनराशि दी गई थी । प्रतिवादी द्वारा यह प्रतिरक्षा ली गई थी कि वादी ने उस समय कतिपय दस्तावेजों पर प्रतिवादी के हस्ताक्षर लिए थे जब प्रतिवादी अपने पिता की गंभीर बीमारी के कारण मानसिक रूप से ठीक नहीं था । प्रतिवादी के अनुसार हस्ताक्षर यह कहकर लिए गए थे कि ऋण के प्रतिदाय के लिए प्रतिभूति सहित किसी अन्य प्रयोजन के लिए दस्तावेजों की आवश्यकता है ।

4. पक्षकारों के अभिवचनों के आधार पर विद्वान् विचारण न्यायालय ने विभिन्न विवाद्यक विरचित किए । वाद में दो अतिरिक्त विवाद्यक अर्थात् विवाद्यक सं. 6-क और 6-ख भी विरचित किए गए थे । इस विवाद्यक पर कि क्या कोई करार किया गया था, विद्वान् विचारण न्यायालय ने सकारात्मक रूप में यह निष्कर्ष अभिलिखित किया कि पक्षकारों के बीच विवादित संपत्ति के विक्रय के लिए एक करार हुआ था और इसलिए वादी ने वादग्रस्त मकान के क्रय के संबंध में तारीख 14 मार्च, 1981 से तारीख

7 सितंबर, 1981 की अवधि के बीच समय-समय पर प्रतिवादी को विभिन्न धनराशियां संदत्त की थीं । प्रतिवादी के पक्षकथन और उससे संबंधित इस विवाद्यक पर कि क्या कोई ऋण संव्यवहार हुआ था, नकारात्मक उत्तर दिया गया था । विद्वान् विचारण न्यायालय ने यह भी अभिलिखित किया कि प्रतिवादी करार को पूरा करने के लिए और विक्रय विलेख निष्पादित करने के लिए आबद्ध था । इन निष्कर्षों के साथ वादी का वाद डिक्री किया गया था । इस अपील में इसी डिक्री को आक्षेपित किया गया है ।

5. अपीलार्थी-प्रतिवादी के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि वादी विनिर्दिष्ट अनुपालन की डिक्री के लिए हकदार नहीं था क्योंकि वादी यह साबित करने में विफल रहा है कि पक्षकारों के बीच विक्रय का कोई करार हुआ था । प्रतिवादी ने न केवल इस बारे में अभिवचन किया है अपितु प्रभावी साक्ष्य भी दिया है कि तथ्यत: संव्यवहार एक ऋण संव्यवहार था और इसलिए वादी ने विशिष्ट परिस्थितियों के अधीन और इस आश्वासन के अधीन कतिपय दस्तावेजों पर हस्ताक्षर कराए थे कि यह संपत्ति के विक्रय के करार से संबंधित संव्यवहार न होकर अन्य कोई संव्यवहार था । अपीलार्थी-प्रतिवादी के विद्वान् काउंसेल ने अगली दलील यह दी है कि वादी ने वर्ष 1981 में तथाकथित रूप से निष्पादित करार के अधीन उस समय तक विक्रय विलेख के निष्पादन के संबंध में कोई कार्रवाई नहीं की जब तक कि वर्ष 1989 में वाद फाइल नहीं कर दिया गया और किसी अभिवचन या साक्ष्य के अभाव में वादी द्वारा विक्रय विलेख के निष्पादन के संबंध में कोई कार्रवाई न करना जिससे कि उसकी संविदा के अपने भाग के लिए उसकी तैयारी और इच्छा साबित होती, वादी डिक्री पाने के लिए हकदार नहीं था । उन्होंने यह दलील दी कि वादी की ओर से वाद फाइल करने में अयुक्तियुक्त विलंब घातक है और ऐसी स्थिति में विद्वान् विचारण न्यायालय वादी के हक में किसी डिक्री को मंजूर करने के लिए अधिकारिता का प्रयोग करने में न्यायोचित नहीं था और इसके प्रतिकूल वाद फाइल करने में विलंब विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 20 में यथा उल्लिखित उपबंध को दृष्टिगत करते हुए विनिर्दिष्ट अनुपालन की डिक्री मंजूर करने हेतु इनकार करने के लिए आबद्धकर परिस्थितियां मौजूद थीं । अपीलार्थी-प्रतिवादी के विद्वान् काउंसेल द्वारा एक अन्य सारभूत दलील यह दी गई है कि वादी के अनुसार और निबंधनों के अनुसार भी और लिखित दस्तावेज (प्रदर्श पी-7) की स्थिति को दृष्टिगत करते हुए संविदा पूर्णतया अनिश्चित थी । अनिश्चितता इसलिए थी कि

विक्रय विलेख न्यायालय द्वारा किराएदार की बेदखली के पश्चात् ही निष्पादित किया जाना था । यह दलील दी गई है कि वाद को फाइल करने की तारीख तक कोई समाश्रितता उत्पन्न नहीं हुई थी । अभिलेख पर ऐसा कोई आधार और अभिवचन या कोई साक्ष्य मौजूद नहीं है कि वाद फाइल करने की तारीख पर विक्रय के लंबन के दौरान या डिक्री पारित करने के समय विवादित परिसर में किराएदार को विधि की प्रक्रिया द्वारा बेदखल कर दिया गया था । अतः ऐसी कोई समाश्रित संविदा विनिर्दिष्ट अनुपालन की किसी डिक्री द्वारा प्रवर्तनीय नहीं थी । अपीलार्थी-प्रतिवादी के विद्वान् काउंसेल ने अपनी दलीलों के समर्थन में उच्चतम न्यायालय द्वारा विनिश्चित **एम. वी. शंकर भट्ट और एक अन्य** बनाम **किलाऊडे पिंटो (मृतक) द्वारा विधिक प्रतिनिधि और अन्य**[1], **मंजू नाथ आनन्दप्पा यू. आर. एफ. शिवप्पा हांसी** बनाम **तम्मानासा और अन्य**[2], **शारदामणि कंदप्पन एस.** बनाम **राजलक्ष्मी और अन्य**[3], **नंजप्पन** बनाम **रामासामी और एक अन्य**[4], **नंदकिशोर लालभाई मेहता** बनाम **न्यू इरा फेबरिक्स प्राइवेट लिमिटेड और अन्य**[5] और **जयाकंदम और अन्य** बनाम **अभय कुमार**[6] वाले मामलों का अवलंब लिया है ।

6. इसके प्रतिकूल प्रत्यर्थी-वादी के विद्वान् काउंसेल ने आक्षेपित निर्णय और डिक्री का समर्थन करते हुए यह दलील दी है कि वादी का यह पक्षकथन कि प्रतिवादी ने तारीख 14 मार्च, 1981 से तारीख 7 सितंबर, 1981 की अवधि के बीच ऋण के रूप में विभिन्न धनराशियां प्राप्त की थीं, पूर्णतया असंभाव्य और अभिलेख पर के मौखिक दस्तावेजी साक्ष्य के प्रतिकूल है । यह दलील दी गई है कि वादी का पक्षकथन प्रतिवादी के दस्तावेजों से जो अभिलेख पर प्रदर्श पी-2-ए, प्रदर्श पी-3, प्रदर्श पी-4 और प्रदर्श पी-7 के रूप में मौजूद हैं, पूर्णतया साबित होता है और जिनसे अविवादित रूप से यह उपदर्शित होता है कि प्रतिवादी को इस बात की जानकारी थी कि उसने विवादित मकान के विक्रय के लिए प्रतिफल के संबंध में समय-समय पर 19,000/- रुपए की कुल धनराशि प्राप्त की थी ।

---

[1] ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 636 = (2003) 4 एस. सी. सी. 86.

[2] ए. आई. आर. 2003 एस. सी. 1391 = (2003) 10 एस. सी. सी. 390.

[3] ए. आई. आर. 2011 एस. सी. 3234 = (2011) 12 एस. सी. सी. 18.

[4] (2015) 14 एस. सी. सी. 341.

[5] ए. आई. आर. 2015 एस. सी. 3796.

[6] (2017) 5 एस. सी. सी. 178.

प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल ने आगे यह दलील दी है कि विधि की अपेक्षा जो विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 16 के अधीन उपबंधित है, वादी की ओर से संविदा के अनुपालन के लिए अपनी तैयारी और इच्छा साबित करनी है । वादी ने 25,000/- की कुल धनराशि में से 19,000/- की सारभूत धनराशि संदत्त की थी और शेष धनराशि के बारे में यह सहमति हुई थी वह विक्रय विलेख के समय संदत्त की जाएगी । इसके सिवाय पक्षकारों के बीच करार के अधीन वादी द्वारा कुछ और करना अपेक्षित नहीं था । अपीलार्थी-प्रतिवादी ने आरंभ से ही वर्ष 1989 में वाद फाइल किए जाने तक किराएदार को बेदखल कराने के लिए कोई कार्रवाई नहीं की । अत: वादी इस आधार का फायदा नहीं ले सकता कि वाद लंबी अवधि के पश्चात् फाइल किया गया था । प्रत्यर्थी-वादी के विद्वान् काउंसेल ने अगली दलील यह दी है कि विद्वान् विचारण न्यायालय ने उसके हक में अपने विवेकाधिकार का ठीक ही प्रयोग किया है क्योंकि विनिर्दिष्ट अनुपालन की डिक्री की मंजूरी एक साम्यापूर्ण उपचार है और इसलिए वादी-प्रत्यर्थी ने प्रतिवादी-अपीलार्थी को वृहत्त धनराशि संदत करते हुए यह अपेक्षा की थी कि वह करार का अनुपालन करेगा किन्तु वर्ष 1981 में करार किए जाने के बावजूद प्रतिवादी-अपीलार्थी ने 8 वर्ष तक न तो किराएदार की बेदखली के लिए वाद फाइल किया और न ही उसने यह साबित करने के लिए न्यायालय के समक्ष कोई साक्ष्य प्रस्तुत किया कि उसने संविदा के अपने भाग के अनुपालन के लिए कार्रवाई की थी, अतः वादी के हक में साम्या मौजूद है, विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा विनिर्दिष्ट अनुपालन की डिक्री की मंजूरी के लिए सम्यक् रूप से विचार में लिया गया था । प्रत्यर्थी-वादी के विद्वान् काउंसेल ने करार की आकस्मिक प्रकृति के आधार पर करार की प्रवर्तनीयता के संबंध में यह दलील दी है कि प्रतिवादी ने पहले ही वर्ष 1989 में एक वाद फाइल करके वादी की बेदखली के लिए कार्रवाई की थी और इसलिए विक्रय करार विधि में प्रवर्तनीय बन गया है ।

7. मैंने पक्षकारों द्वारा दी गई दलीलों पर विचार किया और मामले के अभिलेख का परिशीलन किया ।

8. प्रथम विवाद्यक जिस पर विचार किए जाने की आवश्यकता है, यह है कि क्या वादी-प्रत्यर्थी यह साबित करने में सफल रहा है कि वादी और प्रतिवादी के बीच विवादित संपत्ति के विक्रय के लिए कोई करार हुआ था ।

9. वादी ने अपने वादपत्र में स्पष्ट रूप से यह अभिवाक् किया है कि

तारीख 14 मार्च, 1981 को पक्षकारों के बीच पत्रक सं. 92, खसरा सं. 124/1 में स्थित मकान के जो जगदलपुर में 1034 वर्ग फुट माप की भूमि में बना हुआ है, विक्रय के लिए एक करार हुआ था । वादपत्र में 2,000/- रुपए के संदाय के संबंध में और बाद में 10,000/- रुपए और 5,000/- रुपए के दो चैकों के संबंध में तथा तारीख 7 सितंबर, 1981 को 2,000/- रुपए के एक अन्य संदाय के संबंध में विनिर्दिष्ट अभिवचन किए गए हैं । प्रतिवादी ने इन धनराशियों की प्राप्ति से इनकार नहीं किया है तथापि, उसने यह अभिवाक् किया है कि ये धनराशियां ऋण के संबंध में स्वीकार की गई थीं न कि पक्षकारों के बीच किसी विक्रय करार के अधीन । वादी-प्रत्यर्थी ने अपने पक्षकथन को साबित करने के लिए दो साक्षियों की परीक्षा कराई है । वादी पी. डब्ल्यू.-2 के रूप में स्वयं पेश हुआ है । उसने अपने साक्ष्य में यह अभिसाक्ष्य दिया है कि तारीख 14 मार्च, 1981 को पक्षकारों के बीच 25,000/- रुपए के प्रतिफल के लिए प्रतिवादी के मकान को क्रय करने के संबंध में करार हुआ था और उस तारीख को प्रतिवादी को 2,000/- रुपए नकद संदत्त किए गए थे । इस संबंध में रसीद (प्रदर्श पी-3) भी फाइल की गई है । उसने यह भी अभिसाक्ष्य दिया है कि मकान मुरली मनोहर नामक व्यक्ति के अधिभोग में है जो किराएदार है । इस साक्षी के अनुसार उसने 5,000/- रुपए और 10,000/- रुपए के दो चैक दिए थे और तत्पश्चात् 2,000/- रुपए दिए थे । 10,000/- रुपए और 5,000/- रुपए का चैक देने की रसीद प्रदर्श पी-4 के रूप में फाइल की गई है जिसमें 2,000/- रुपए की नकद प्राप्ति की स्वीकृति भी सम्मिलित है । वादी ने प्रतिवादी द्वारा प्रदर्श पी-7 में की गई लिखित घोषणा का भी अवलंब लिया है जो उस संव्यवहार के साक्ष्य के रूप में है कि पक्षकारों के बीच करार किया गया था । इस साक्षी की विस्तार से प्रतिपरीक्षा की गई है, तथापि, उसकी प्रतिपरीक्षा में कोई भी तात्विक बात नहीं निकली है । प्रतिवादी का यह अभिवचन है कि उसने उस समय ऋण के संदाय के संबंध में प्रतिभूति के रूप में विभिन्न दस्तावेज निष्पादित किए थे जब उसके पिता गंभीर रूप से बीमार थे, जिसे स्वीकार नहीं किया जा सकता और यह बात इस समवर्ती, प्रबल और विश्वसनीय तथा दस्तावेजी साक्ष्य के विरुद्ध विश्वास किए जाने योग्य नहीं है कि पक्षकारों के बीच विक्रय करार नहीं हुआ था और वादी द्वारा प्रतिवादी को तारीख 14 मार्च, 1981 से तारीख 7 सितंबर, 1981 की अवधि के बीच विभिन्न धनराशियों का संदाय

नहीं किया गया था । अतः इस संबंध में विद्वान् विचारण न्यायालय के निष्कर्ष की पुष्टि की जाती है ।

10. वादी-प्रत्यर्थी का यह पक्षकथन है कि विक्रय विलेख का निष्पादन किराएदार की बेदखली पर आश्रित था जो उस समय विवादित मकान का अधिभोग कर रहा था । वादी ने वादपत्र के पैरा 1 में इस प्रकार प्रकथन किया है :–

(न्यायालय द्वारा स्थानीय भाषा का लोप किया गया)

11. वादी ने पी. डब्ल्यू.-2 के रूप में परीक्षा कराते हुए इस प्रकार अभिसाक्ष्य दिया है :–

(न्यायालय द्वारा स्थानीय भाषा का लोप किया गया)

12. अतः स्वयं वादी के अभिवचनों और साक्ष्य से यह स्पष्ट होता है कि पक्षकारों के बीच यह करार किया गया था कि प्रतिवादी किराएदार की बेदखली के पश्चात् वादी के हक में विक्रय विलेख का निष्पादन करेगा । प्रतिवादी द्वारा प्रदर्श पी-7 में की गई घोषणा में किए गए उल्लेख से भी यह स्पष्ट होता है कि वादी द्वारा निष्पादन के संबंध में विवाद नहीं किया गया है । इस दस्तावेज में निम्न प्रकार उल्लेख है :–

> "यह है कि मकान श्री मुरली मनोहर द्वारा लाइसेंसी के रूप में अधिभोग में है । मैं श्री मुरली मनोहर वर्मा को बेदखल कराने के पश्चात् क्रेता को मकान के कब्जे का परिदान करूंगा । मुरली मनोहर वर्मा की बेदखली के लिए वाद न्यायालय में लंबित है ।"

13. अतः यह स्पष्ट है कि विवादित संपत्ति के विक्रय करार के अधीन विक्रय विलेख का निष्पादन किराएदार की बेदखली के पश्चात् होना था । वादी द्वारा यह साबित करने के लिए कोई अभिवचन और साक्ष्य पेश नहीं किया गया है कि वाद फाइल करने की तारीख (जो तारीख 5 सितंबर, 1989 को फाइल किया गया) से पूर्व या वाद के लंबन के दौरान या विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा डिक्री पारित किए जाने के समय किराएदार की बेदखली हो चुकी थी जिससे कि यह कहा जा सके कि पक्षकारों के बीच विक्रय करार विधि में प्रवर्तनीय बन गया था । इस प्रक्रम पर मैं उच्चतम न्यायालय द्वारा **नंद किशोर लालभाई मेहता** (पूर्वोक्त) वाले मामले में दिए गए विनिश्चय का निर्देश करना उचित समझता हूं । यह एक ऐसा मामला

था, पक्षकारों के बीच विक्रय करार इस शर्त पर और इस शर्त के अध्यधीन किया गया था कि विक्रेता अपने मजदूर से मामले में समझौता कर लेगा और मजदूर विक्रय के लिए तैयार हो जाएगा । तथ्यों के आधार पर यह पाया गया था कि मजदूर विक्रय अनुध्यात करने के लिए तैयार नहीं हुआ । माननीय उच्चतम न्यायालय ने इस तथ्यात्मक पृष्ठभूमि में यह अभिनिर्धारित किया कि विवादित संपत्ति का स्वामी संपत्ति को विक्रीत करने के लिए आबद्ध नहीं था और इसलिए वादी के हक में विनिर्दिष्ट अनुपालन की डिक्री मंजूर नहीं की जा सकती । उक्त मामले में इस प्रकार अभिनिर्धारित किया गया था :–

"43. यह दलील सही नहीं है कि अपीलार्थी ने प्रस्तावित विक्रय के लिए मजदूर की सहमति लेने के संबंध में शर्त त्यक्त कर दी थी और इसलिए यह बात संविदा के रद्दकरण के लिए एक आधार के रूप में नहीं हो सकती । तारीख 19 अक्तूबर, 1977 के करार में यह बात विनिर्दिष्ट रूप से उल्लिखित है कि विक्रय इस शर्त के अध्यधीन था कि आप (प्रतिवादी) अपने मजदूर से समझौता करने में कामयाब होंगे और आपका मजदूर विक्रय अनुध्यात करने के लिए तैयार हो जाएगा और यदि आप अपने मजदूर से समझौता करने में कामयाब नहीं होंगे और विक्रय करार के लिए उसको तैयार नहीं कर पाएंगे तो प्रतिवादी विक्रय पूरा करने के लिए आबद्ध नहीं होगा । मौजूदा मजदूर विक्रय अनुध्यात करने के लिए तैयार नहीं हुआ इसलिए प्रत्यर्थी संविदा के निबंधनों के अधीन विक्रय पूरा करने के लिए आबद्ध नहीं हैं । नौ मास की अधिकतम अवधि का यह अर्थ नहीं हो सकता कि यदि मजदूर प्रस्तावित विक्रय के लिए अपनी सम्मति देने से इनकार करता है तो संविदा नौ मास की अवधि के लिए प्रतिस्थापित हो जाएगी और यह इस अवधि के पूर्व पर्यवसित नहीं हो सकती । विक्रय के लिए समाश्रित करार है जो यू. एल. सी. अधिनियम की धारा 22 और 27 के अधीन अनुमति प्राप्त करने पर निर्भर है और यह अनुमति संपत्ति को औद्योगिक परिक्षेत्र से आवासीय परिक्षेत्र में परिवर्तित करने और मजदूर से समझौता करने के लिए है और इसलिए मजदूर विक्रय करने के लिए अनुध्यात करेगा । यदि कोई शर्त पूरी नहीं की जाती है तो प्रत्यर्थी विक्रय पूरा करने के लिए आबद्ध नहीं है और अपीलार्थी केवल ऊपर उल्लिखित अनुमति या सम्मति या करार के इनकार की तारीख से 18 प्रतिशत वार्षिक की

दर से ब्याज के साथ धन वापस लेने के लिए हकदार है । चूंकि वर्तमान मामले में हमने यह पाया है कि मिल मजदूर सभा ने प्रस्तावित विक्रय के लिए अपनी सम्मति नहीं दी इसलिए विक्रय करार का अनुपालन नहीं किया जा सका और वह विफल हो गया । अपीलार्थी करार में उल्लिखित 18 प्रतिशत वार्षिक की दर से ब्याज के साथ धनराशि को वापस लेने का हकदार है ।"

14. उपर्युक्त विनिश्चय में उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि का सिद्धांत स्पष्ट रूप से भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 की धारा 32 में उल्लिखित कानूनी उपबंध के प्रकाश में है, जो इस प्रकार है :–

"32. **ऐसी संविदाओं का प्रवर्तन जो किसी घटना के घटित होने पर समाश्रित हों** – उन समाश्रित संविदाओं का प्रवर्तन, जो किसी अनिश्चित भावी घटना के घटित होने पर, किसी बात को करने या न करने के लिए हो, विधि द्वारा नहीं कराया जा सकता, यदि और जब तक वह घटना घटित न हो गई हो ।

यदि वह घटना असंभव हो जाए, तो ऐसी संविदाएं शून्य हो जाती हैं ।"

15. उच्चतम न्यायालय का किसी समाश्रित संविदा की प्रवर्तनीयता के पहलू पर उपर्युक्त निष्कर्ष स्वतः वादी को वाद फाइल न करने के लिए और उसे संविदा के विनिर्दिष्ट अनुपालन की डिक्री हेतु हकदार न बनाने के लिए पर्याप्त है ।

16. जहां तक विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 20 में उल्लिखित उपबंध के आधार पर दी गई दलील का संबंध है, उच्चतम न्यायालय द्वारा अधिकथित नज़ीरें आबद्धकर नहीं हैं क्योंकि न्यायालय पक्षकारों के बीच विक्रय करार के निष्पादन के सबूत के आधार पर विनिर्दिष्ट अनुतोष की डिक्री मंजूर करने के लिए आबद्ध नहीं है । विवेकाधिकार के प्रयोग के लिए सुसंगत विचारणा पर न्यायालय द्वारा ऐसी डिक्री मंजूर किए जाने के पूर्व परीक्षा किए जाने की आवश्यकता होगी । इस संबंध में विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 20 के अधीन अन्तर्विष्ट सुसंगत उपबंध को निर्दिष्ट करना सुसंगत होगा, जो इस प्रकार है :–

"20. **विनिर्दिष्ट पालन की डिक्री करने के बारे में**

विवेकाधिकार – (1) विनिर्दिष्ट पालन की डिक्री करने की अधिकारिता वैवेकिक है और न्यायालय ऐसा अनुतोष अनुदत्त करने के लिए आबद्ध नहीं है केवल इस कारण से कि ऐसा करना विधिपूर्ण है किन्तु न्यायालय का यह विवेकाधिकार मनमाना नहीं है वरन् स्वस्थ और युक्तियुक्त, न्यायिक सिद्धांतों द्वारा मार्गदर्शित तथा अपील न्यायालय द्वारा शुद्धिशक्य है ।

(2) निम्नलिखित दशाएं ऐसी हैं जिनमें न्यायालय विनिर्दिष्ट पालन की डिक्री न करने के अपने विवेकाधिकार का उचिततया प्रयोग कर सकेगा --

(क) जहां कि संविदा के निबंधन या संविदा करने के समय पक्षकारों का आचरण या अन्य परिस्थितियां, जिनके अधीन संविदा की गई थी, ऐसी हों कि संविदा यद्यपि शून्यकरणीय नहीं है, तथापि, वादी को प्रतिवादी के ऊपर अऋजु फायदा देती है ; अथवा

(ख) जहां कि संविदा का पालन प्रतिवादी को कुछ ऐसे कष्ट में डाल देगा जिसे वह पहले से कल्पना नहीं कर सका था और उसका अपालन वादी को वैसे किसी कष्ट में नहीं डालेगा;

(ग) जहां कि प्रतिवादी ने संविदा ऐसी परिस्थितियों के अधीन की जिनसे यद्यपि संविदा शून्यकरणीय तो नहीं हो जाती किन्तु उसके विनिर्दिष्ट पालन का प्रवर्तन असाम्यिक हो जाता है ।

स्पष्टीकरण 1 – प्रतिफल की अपर्याप्तता मात्र या यह तथ्य मात्र कि संविदा प्रतिवादी के लिए दुर्भर या अपनी प्रकृति से ही अदूरदर्शी है, खण्ड (क) के अर्थ के भीतर अऋजु फायदा अथवा खण्ड (ख) के अर्थ के भीतर कष्ट न समझा जाएगा ।

स्पष्टीकरण 2 – यह प्रश्न कि संविदा का पालन खण्ड (ख) के अर्थ के भीतर प्रतिवादी को कष्ट में डाल देगा या नहीं, संविदा के समय विद्यमान परिस्थितियों के प्रति निर्देशन से अवधारित किया जाएगा सिवाय उन दशाओं के जिनमें कि कष्ट संविदा के पश्चात् वादी द्वारा किए गए ऐसे किसी कार्य के परिणामस्वरूप हुआ हो ।

(3) किसी ऐसी दशा में जहां कि वादी ने विनिर्दिष्टतः पालनीय

संविदा के परिणामस्वरूप सारवान् कार्य किए हैं या हानियां उठाई हैं वहां न्यायालय विनिर्दिष्ट पालन की डिक्री करने के विवेकाधिकार का उचिततया प्रयोग कर सकेगा ।

(4) न्यायालय किसी पक्षकार को संविदा का विनिर्दिष्ट पालन कराने से इनकार केवल इस आधार पर नहीं करेगा कि संविदा दूसरे पक्षकार की प्रेरणा पर प्रवर्तनीय नहीं है ।"

17. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **एम. वी. शंकर भट्ट** (पूर्वोक्त) वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि विनिर्दिष्ट अनुपालन की डिक्री ऐसे किसी मामले में मंजूर नहीं की जा सकती जहां आशयित क्रेता एक वकील है और उसके द्वारा वाद स्वयं अपने मुवक्किल के साथ किसी करार का प्रवर्तन कराने के लिए फाइल किया गया हो ।

18. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **मंजूनाथ आनदप्पा** (पूर्वोक्त) वाले मामले में इन बातों के साथ-साथ यह पाया था कि वादी ने करार निष्पादित होने की तारीख से लगभग 6 वर्ष के पश्चात् वाद फाइल किया था और वह अभिलेख पर यह उपदर्शित करने वाली कोई सामग्री पेश करने में विफल रहा कि उसने प्रतिवादी अर्थात् संपत्ति के स्वामी से विक्रय विलेख के निष्पादन के लिए कभी-भी कहा था । इन परिस्थितियों में ऐसे मामलों में विधि वहां लागू होती है जहां वाद युक्तियुक्त अवधि के भीतर फाइल न किए गए हों और इसका प्रभाव वादी पर वैवेकिक अनुतोष की हकदारी पर पड़ता हो । इस मामले में इस प्रकार अभिनिर्धारित किया गया था :–

"मामले का एक अन्य पहलू भी है जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती । वादी ने विक्रय के लिए करार निष्पादित होने की तारीख से लगभग 6 वर्ष की अवधि के पश्चात् वाद फाइल किया है । उसने अभिलेख पर यह उपदर्शित करने वाली कोई सामग्री पेश नहीं की है कि उसने प्रतिवादी सं. 1 अर्थात् संपत्ति के स्वामी से कभी-भी विक्रय विलेख निष्पादित करने के लिए कहा था । उसने इस बात की जानकारी होने के पश्चात् वाद फाइल किया कि प्रतिवादी ने वादान्तर्गत भूमि हमारे समक्ष के अपीलार्थी के हक में पहले ही विक्रीत कर दी थी । इसके अतिरिक्त वादी पर यह आबद्धकर था कि वह युक्तियुक्त समय के भीतर न्यायालय में समावेदन करने के लिए अधिनियम की धारा 20 से संबंधित वैवेकिक अनुतोष प्राप्त करने के

लिए अनुरोध करे । वादी के इस आचरण को दृष्टिगत करते हुए वादी वैवेकिक अनुतोष के लिए हकदार नहीं था ।

31. वीराइअम्मल **बनाम** सीनी अम्मल ए. आई. आर. 2001 एस. सी. 2920 = (2002) 1 एस. सी. सी. 134 वाले मामले में विधि का निम्नलिखित निबंधनों में उल्लेख किया गया है –

'11. जब स्वीकृत रूप से संविदा में समय का उल्लेख न हो वहां अपीलार्थी-वादी से अपेक्षित है कि वह युक्तियुक्त समय के भीतर न्यायालय में समावेदन करे । इस न्यायालय की एक सांविधानिक न्यायपीठ ने चांद रानी **बनाम** कमल रानी ए. आई. आर. 1993 एस. सी. 1742 = (1993) 1 एस. सी. सी. 519 वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया कि जंगम संपत्ति के विक्रय के मामले में संविदा में आवश्यक रूप से समय के बारे में कोई उपधारणा नहीं है । यदि यह संविदा की आवश्यकता न हो तो भी न्यायालय यह निष्कर्ष निकाल सकता है कि इसका अनुपालन युक्तियुक्त समय के भीतर होना चाहिए, यदि शर्तें इस प्रकार की हों – (i) संविदा के स्पष्ट निबंधनों से ; (ii) संपत्ति की प्रकृति से ; और (iii) संबद्ध परिस्थितियों से, उदाहरणार्थ संविदा करने के उद्देश्य से जो निष्कर्ष निकलता हो । अनुतोष मंजूर करने के प्रयोजन के लिए मामले के सम्पूर्ण परिस्थितियों से युक्तियुक्त समय सुनिश्चित किया जाना चाहिए ।

12. इस न्यायालय ने के. एस. विद्यानंदम **बनाम** वैरावन ए. आई. आर. 1997 एस. सी. 1751 वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि जहां संविदा में समय के उल्लेख की आवश्यकता न हो वहां वादी को अपनी ओर से युक्तियुक्त समय के भीतर संविदा के अनुपालन के लिए कार्रवाई करनी चाहिए और युक्तियुक्त समय संविदा के स्पष्ट निबंधनों और संपत्ति की प्रकृति सहित सभी संबद्ध परिस्थितियों को दृष्टिगत करते हुए अवधारित किया जाना चाहिए ।

13. विधि में "युक्तियुक्त" शब्द का अर्थ उन परिस्थितियों से संबंधित युक्तियुक्तता से है जिनमें संबंधित व्यक्ति ने यह जानते हुए या न जानते हुए कि युक्तियुक्त क्या था, कार्रवाई

करने के लिए कहा हो । "युक्तियुक्त" शब्द की निश्चित परिभाषा देना अयुक्तियुक्त हो सकता है । कारण व्यक्ति की भिन्न-भिन्न स्वभाव-विशेषता (विलक्षणता) के अनुसार इसका निष्कर्ष निकालना चाहिए और ऐसा निष्कर्ष समय और परिस्थितियों में जैसा कि वह सोचता हो, निकाला जा सकता है । "युक्तियुक्त" शब्द का शब्दावली अर्थ ऐसा कोई समय है जो परिस्थितियों के अधीन सुविधाजनक रूप से आवश्यक हो और संविदा या दायित्व के अनुसार किसी विशिष्ट मामले में किए जाने की आवश्यकता है । दूसरे शब्दों में इसका अर्थ यथाशीघ्र जैसी कि परिस्थितियां अनुज्ञात करें, है । पी. रामनाथ अय्यर कृत 'दि ला लैक्सीकॉन' में इसका अर्थ इस प्रकार दिया गया है –

'मामले की सभी परिस्थितियों को दृष्टिगत करते हुए कोई युक्तियुक्त अवधि साधारण परिस्थितियों के अधीन युक्तियुक्त अवधि होती है ; जैसे कि परिस्थितियां अनुज्ञात करें ; परिस्थितियों के अधीन ऐसा समय आवश्यक है जो सुविधाजनक रूप से उस बात को पूरा करे जो संविदा किए जाने के लिए अपेक्षित हो ; कतिपय अधिक दीर्घकालिक समय जो प्रत्यक्षतया अर्थ से भिन्न हो ; ऐसी समय अवधि जो ऋजुतापूर्वक और समुचित रूप से तथा युक्तियुक्त रूप से अनुध्यात मानी जाए या अपेक्षित हो और यह बात कार्य या कर्तव्य की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए और संबद्ध परिस्थितियों के अधीन समझी जाएगी ; उपरोक्त सभी बातें न्यूनाधिक एक ही विचारणा जैसी है ।'

32. न्यायालय ने लौरडू मारी डेविड और अन्य **बनाम** लुइस चिनय्या अरोगियास्वामी और अन्य ए. आई. आर. 1996 एस. सी. 2814 वाले मामले में इस प्रकार मत व्यक्त किया है –

'यह सुस्थापित विधि है कि उस पक्षकार को जो किसी न्यायालय की साम्यपूर्ण अधिकारिता का फायदा लेना चाहता है और साम्यपूर्ण अनुतोष होने के नाते विनिर्दिष्ट अनुपालन का फायदा लेना चाहता है, न्यायालय के समक्ष बेहतर आशय से आना चाहिए । दूसरे शब्दों में, ऐसा पक्षकार जो मिथ्या

अभिकथन करता है, न्यायालय के समक्ष बेहतर आशय से नहीं आता और वह साम्यपूर्ण अनुतोष के लिए हकदार नहीं है ।"

19. **शारदामणि कंदप्पन** (पूर्वोक्त) वाले मामले के पश्चात्वर्ती विनिश्चय में पूर्व में अधिकथित सिद्धांतों को दोहराते हुए पुनः स्थापित किया गया था और अन्य परिस्थितियां इस विवेकाधिकार का प्रयोग करने के लिए सुसंगत नहीं हैं कि क्या ऐसी परिस्थितियां विनिर्दिष्ट अनुपालन की डिक्री मंजूर करने के लिए सुसंगत हैं या नहीं और क्या वादी पक्षकारों के बीच विक्रय करार को साबित करने में समर्थ रहा है या नहीं । इस मामले में इस प्रकार अभिनिर्धारित किया गया था :–

"43. किसी समुचित मामले में विवाद्यक पर विचार किए जाने तक हम केवल यह दोहरा सकते हैं कि के. एस. विद्यानंदम (पूर्वोक्त) वाले मामले में क्या सुझाव दिया गया है –

(i) न्यायालयों को विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए वादों में विवेक का प्रयोग करते हुए यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि जहां पक्षकारों द्वारा संव्यवहार को पूरा करने के लिए या कतिपय कार्रवाई करने के लिए कोई समय/अवधि विहित की गई हो वहां उसका कतिपय महत्व होता है और इसलिए विहित समय/अवधि की उपेक्षा नहीं की जा सकती ।

(ii) न्यायालयों को गहराई से जांच करनी चाहिए और ऐसी जांच कठोरता के साथ की जानी चाहिए जब इस बात पर विचार किया जाए कि क्या क्रेता संविदा के अपने भाग को पूरा करने के लिए 'तैयार और इच्छुक' था ।

(iii) यह आवश्यक नहीं है कि विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए प्रत्येक वाद को मात्र इस कारण डिक्री किया जाए कि यह समय परिसीमा अवधि के भीतर फाइल किया गया है और करार में विहित समय परिसीमा की अनदेखी की जाए । न्यायालयों को ऐसे वादों में 'अप्रसन्नता' भी प्रकट करनी चाहिए जो वाद भंग/इनकार के तुरन्त पश्चात् फाइल नहीं किए गए हैं । इस तथ्य का कि परिसीमा अवधि 3 वर्ष है, यह अर्थ नहीं हो सकता कि क्रेता वाद फाइल करने के लिए और विनिर्दिष्ट अनुपालन की डिक्री प्राप्त करने के लिए एक या दो वर्षों तक परीक्षा करे । तथ्यतः तीन वर्ष की अवधि ऐसे विशेष

मामलों में सहायता करने के लिए आशयित है जहां अधिकतर प्रतिफल विक्रेता को संदत्त कर दिया गया है और भागतः अनुपालन में कब्जा परिदत्त कर दिया गया है जहां साम्या क्रेता के हक में अंतरित हो जाता है ।"

20. **जयाकंदम** (पूर्वोक्त) वाले मामले के एक अद्यतन विनिश्चय में अनुतोष मंजूर करने के लिए या विनिर्दिष्ट अनुतोष की डिक्री मंजूर करने या न करने के लिए विवेकाधिकार के प्रयोग के मामले में सुसंगत विचारणा और लागू सिद्धांतों पर पूर्व निर्णयों की परीक्षा करके यह अभिनिर्धारित करने के लिए पुनः विचार किया गया था कि न्यायालय मात्र इस कारण विनिर्दिष्ट अनुपालन का अनुतोष मंजूर करने के लिए आबद्ध नहीं है कि यह विधिपूर्ण रूप से किया गया है और विनिर्दिष्ट अनुपालन की डिक्री के लिए अधिकारिता का प्रयोग करने के लिए पुख्ता और युक्तियुक्त सिद्धांत मौजूद हैं और समुचित मामलों में भी यदि यह विधिपूर्ण है तो भी न्यायालय विनिर्दिष्ट अनुपालन की डिक्री मंजूर करने से इनकार कर सकता है और पक्षकारों के बीच संतुलन बनाने के लिए साम्यापूर्ण रूप में वादी द्वारा प्रतिवादी को कतिपय ब्याज के साथ ऋण का संदाय करने के लिए निदेश दे सकता है ।

21. किसी भी दृष्टि से विचार करते हुए विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री को कायम नहीं रखा जा सकता । अत: यह अपील मंजूर की जाती है तथा आक्षेपित निर्णय और डिक्री को अपास्त किया जाता है । वादी द्वारा तारीख 14 मार्च, 1981 से तारीख 7 सितंबर, 1981 की अवधि के बीच प्रतिवादी को संदत्त 19,000/- रुपए की धनराशि प्रतिवादी द्वारा 3 मास की अवधि के भीतर 6 प्रतिशत वार्षिक साधारण ब्याज के साथ वादी को वापिस की जाएगी । यदि इस प्रकार निदेश की गई धनराशि संदत्त नहीं की जाती है तो वादी उक्त धनराशि की वसूली के लिए विधि के अनुसार डिक्री के निष्पादन के लिए अनुरोध कर सकता है ।

22. तद्नुसार डिक्री बनाई जाए । खर्चों का सत्यापन किया जाता है ।

अपील में तद्नुसार आदेश पारित किया गया ।

मह.

दीपक कुमार सिन्हा

बनाम

विनय कुमार सिन्हा

तारीख 9 अक्तूबर, 2017

न्यायमूर्ति श्री चन्द्रशेखर

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – धारा 47 और आदेश 21, नियम 23 – डिक्री की निष्पादन कार्यवाही में आक्षेप – सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अधीन आवेदन में समान मुद्दा उठाया जाना – चूंकि विवाद्यक का रिट याचिका खारिज किए जाने के समय विनिश्चय कर दिया गया था – अतः निष्पादन कार्यवाही में वही मुद्दा उठाने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जा सकता ।

संक्षेप में मामले के तथ्य इस प्रकार हैं कि कांता प्रसाद और उसकी पत्नी राधा देवी द्वारा 1990 का हक वाद सं. 152 संस्थित किया गया था । वाद में कैलाश पति प्रसाद लाल और उसके पुत्र दीपक कुमार सिन्हा (वर्तमान याची) को प्रतिवादी सं. 1 और 2 के रूप में पक्षकार बनाया गया था । वाद तारीख 24 अगस्त, 1981, तारीख 1 अप्रैल, 1989 और तारीख 21 सितंबर, 1990 के करारों के विनिर्दिष्ट अनुपालन की डिक्री के लिए संस्थित किया गया था । वादियों द्वारा प्रतिवादियों के विरुद्ध वादियों के कब्जे में हस्तक्षेप को रोकने के लिए स्थायी व्यादेश की डिक्री के लिए भी अनुरोध किया गया था । विरोध करने पर वाद तारीख 19 अप्रैल, 1993 के निर्णय और आदेश द्वारा खारिज किया गया था । तारीख 29 अप्रैल, 1993 को डिक्री पर हस्ताक्षर करके उसे सीलबंद किया गया था, जिसके विरुद्ध वादियों ने 1993 की हक अपील सं. 68 फाइल की थी । चूंकि यह अपील तारीख 6 दिसंबर, 1996 को मंजूर की गई थी और परिणामतः 1990 का हक वाद सं. 152 तारीख 1 अप्रैल, 1989 और तारीख 21 सितंबर, 1990 के विक्रय करार के संबंध में डिक्री किया गया था । इस आदेश को 1997 की द्वितीय अपील सं. 11 (आर) में आक्षेपित किया गया था । अंततः तारीख 17 सितंबर, 2004 के आदेश द्वारा द्वितीय अपील सं. 3 का विरोध करने पर अपील खर्चे सहित खारिज की गई थी । 2005 की विशेष इजाजत याचिका सिविल सं. 1374 जो प्रतिवादी सं. 1 के विधिक वारिसों द्वारा

द्वितीय अपील में अंतिम आदेश के विरुद्ध प्रस्तुत की गई थी, तारीख 31 जनवरी, 2005 को खारिज कर दी गई थी । वादियों ने 1997 का निष्पादन मामला सं. 8 संस्थित किया था जिसमें प्रतिवादी/निर्णीत ऋणियों द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अधीन कतिपय आक्षेप फाइल किए गए थे जिसमें उन्होंने इस आक्षेप सहित विभिन्न आक्षेप उठाए थे कि 4 कट्ठा 4 धुर्रा भूमि के संबंध में निष्पादन 1993 की हक अपील सं. 68 में पारित डिक्री के बाह्य होगा । तद्नुसार 2005 का प्रकीर्ण मामला 01 संस्थित किया गया था । तथापि, यह प्रकीर्ण मामला तारीख 10 मई, 2007 को खारिज कर दिया गया था । याची ने 2005 के प्रकीर्ण मामला सं. 01 में पारित इस आदेश के विरुद्ध 2007 की रिट याचिका (सिविल) सं. 4663 इस न्यायालय में फाइल की थी, तथापि, वह सफल नहीं हुआ । रिट याचिका तारीख 17 सितंबर, 2010 के आदेश द्वारा मुख्यतया इस आधार पर खारिज की गई थी कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अधीन द्वितीय आवेदन सकारात्मक पूर्व न्याय द्वारा वर्जित था । यह उल्लेख करना उचित होगा कि निर्णीत-ऋणियों ने द्वितीय अपील के लंबन के दौरान सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अधीन आक्षेप फाइल किया था जो तारीख 8 जून, 2004 को खारिज कर दिया गया था । निष्पादन मामले में निर्णीत-ऋणियों को सूचना जारी करने के पश्चात् याची ने तारीख 1 अगस्त, 2007 को सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21, नियम 23(2) के अधीन आक्षेप फाइल किया था । इसके सात वर्ष के पश्चात् उसने तारीख 1 अगस्त, 2007 के आक्षेप में एक अनुपूरक शपथपत्र फाइल किया जिसमें उसने निष्पादन के संबंध में अतिरिक्त आक्षेप उठाए । तारीख 6 मई, 2017 के आदेश द्वारा याची के आक्षेप खारिज कर दिए गए । याची ने इसी आदेश के विरुद्ध इस न्यायालय के समक्ष यह रिट याचिका फाइल की है । याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – निस्संदेह 1993 की हक अपील सं. 68 में तैयार की गई डिक्री में केवल तारीख 1 अप्रैल, 1989 के करार का निर्देश किया गया है तथापि, जब 1997 के निष्पादन मामला सं. 8 में अनुरोध को 1990 के हक वाद सं. 152 में अनुसूचित संपत्ति के संदर्भ में देखा जाए और अपील न्यायालय के निर्णय को विशेषतया पैरा सं. 16 को संपूर्णतया पढ़ा जाए जिसमें वादियों को तारीख 1 अप्रैल, 1989 और तारीख 21 सितंबर, 1990 के विक्रय करारों के आधार पर संविदा के विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए हकदार पाया गया है, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि याची द्वारा दी गई

दलील सूक्ष्म तकनीक पर आधारित है । प्रतिवादियों द्वारा पेश की गई द्वितीय अपील खारिज कर दी गई थी और उक्त आदेश के विरुद्ध पेश की गई विशेष इजाजत याचिका भी खारिज कर दी गई थी । सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 यह उपबंध करती है कि उस वाद में जिसमें डिक्री पारित की गई है, पक्षकारों के बीच उद्‌भूत सभी प्रश्न और निष्पादन, उन्मोचन या डिक्री के समाधान से संबंधित सभी प्रश्नों का डिक्री का निष्पादन करने वाले न्यायालय द्वारा अवधारण किया जाएगा । याची ने तारीख 28 मार्च, 2005 को सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अधीन दिए गए आवेदन में एक बार पुनः वही आक्षेप उठाए हैं जो उसने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21, नियम 23 के अधीन आक्षेप में उठाए थे । जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है कि तारीख 10 मई, 2007 के आदेश द्वारा 2005 का प्रकीर्ण मामला सं. 01 खारिज कर दिया गया था और यह आदेश 2007 की रिट याचिका (सिविल) सं. 4663 की खारिजी के पश्चात् अंतिम बन गया था । चूंकि यह दलील कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अधीन कार्यवाहियां सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21, नियम 23(2) के अधीन निर्णीत-ऋणी द्वारा पेश किया गया आक्षेप पृथक्-पृथक् कार्यवाहियां हैं और इन्हें एक सीमा तक ही उठाया जा सकता है तथापि, उस विवाद्यक को सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अधीन आवेदन में विनिर्दिष्ट रूप से उठाया गया है, एक बार पुनः सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21, नियम 23(2) के अधीन एक आक्षेप में उठाना अनुज्ञात नहीं किया जा सकता । याची द्वारा 4 कट्ठा, 4 धुर्रा भूमि के लिए निष्पादन में आक्षेप विनिर्दिष्ट रूप से सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अधीन उठाया गया है और इस विवाद्यक का रिट याचिका खारिज किए जाने के समय विनिश्चय कर दिया गया था । (पैरा 6 और 7)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2017]	ए. आई. आर. 2017 एस. सी. 1577 = (2017) 5 एस. सी. सी. 371 : **बरैकवेल आटोमोटिव कम्पोनेंट्स (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड** बनाम **पी. आर. सेलवम अलगप्पन ;**	4, 5

[1970] ए. आई. आर. 1970 एस. सी. 1475 = (1970) 1 एस. सी. सी. 670 : **वासुदेव धनजीभाई मोदी** बनाम **राजाभाई अब्दुल रहमान और अन्य** । 5

आरंभिक (सिविल) रिट अधिकारिता : 2017 की रिट याचिका (सिविल) सं. 4784.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन सिविल रिट याचिका ।

याची की ओर से श्री शशांक शेखर

प्रत्यर्थी की ओर से –

न्यायमूर्ति श्री चन्द्रशेखर – याची ने 1997 के निष्पादन मामला सं. 8 में तारीख 6 मई, 2017 के आदेश से व्यथित होकर इस न्यायालय में यह याचिका फाइल की है । उक्त मामले में निर्णीत ऋणी/याची द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21, नियम 23(2) के अधीन फाइल आक्षेप को खारिज किया गया है ।

2. संक्षेप में मामले के तथ्य इस प्रकार हैं कि कांता प्रसाद और उसकी पत्नी राधा देवी द्वारा 1990 का हक वाद सं. 152 संस्थित किया गया था । वाद में कैलाश पति प्रसाद लाल और उसके पुत्र दीपक कुमार सिन्हा (वर्तमान याची) को प्रतिवादी सं. 1 और 2 के रूप में पक्षकार बनाया गया था । वाद तारीख 24 अगस्त, 1981, तारीख 1 अप्रैल, 1989 और तारीख 21 सितंबर, 1990 के करारों के विनिर्दिष्ट अनुपालन की डिक्री के लिए संस्थित किया गया था । वादियों द्वारा प्रतिवादियों के विरुद्ध वादियों के कब्जे में हस्तक्षेप को रोकने के लिए स्थायी व्यादेश की डिक्री के लिए भी अनुरोध किया गया था । विरोध करने पर वाद तारीख 19 अप्रैल, 1993 के निर्णय और आदेश द्वारा खारिज किया गया था । तारीख 29 अप्रैल, 1993 को डिक्री पर हस्ताक्षर करके उसे सीलबंद किया गया था, जिसके विरुद्ध वादियों ने 1993 की हक अपील सं. 68 फाइल की थी । चूंकि यह अपील तारीख 6 दिसंबर, 1996 को मंजूर की गई थी और परिणामतः 1990 का हक वाद सं. 152 तारीख 1 अप्रैल, 1989 और तारीख 21 सितंबर, 1990 के विक्रय करार के संबंध में डिक्री किया गया था । इस आदेश को 1997 की द्वितीय अपील सं. 11 (आर) में आक्षेपित किया गया था । न्यायालय द्वारा विधि के निम्नलिखित सारभूत प्रश्न विरचित किए गए थे :–

"1. क्या वादियों के वाद में किए गए अनुरोध के आधार पर प्रथम अपील न्यायालय के पास तारीख 1 अप्रैल, 1989 के करार के विनिर्दिष्ट पालन के लिए कोई डिक्री पारित करने की गुंजाइश है, क्योंकि बाद में कतिपय घटनाएं घटित हुई हैं ?

2. क्या यह उपधारित करने पर कि तारीख 21 सितंबर, 1990 का प्रदर्श-3 निष्पादित हुआ था जबकि प्रतिवादी सं. 1 का वाद संपत्ति के ऊपर कोई हित विद्यमान नहीं था तब भी क्या वादी तारीख 21 सितंबर, 1990 के प्रदर्श-3 की विद्यमानता के आधार पर प्रदर्श-8 पर कोई साम्यापूर्ण अनुतोष प्राप्त कर सकता है ?"

3. अंततः तारीख 17 सितंबर, 2004 के आदेश द्वारा द्वितीय अपील सं. 3 का विरोध करने पर अपील खर्चे सहित खारिज की गई थी । 2005 की विशेष इजाज़त याचिका सिविल सं. 1374 जो प्रतिवादी सं. 1 के विधिक वारिसों द्वारा द्वितीय अपील में अंतिम आदेश के विरुद्ध प्रस्तुत की गई थी, तारीख 31 जनवरी, 2005 को खारिज कर दी गई थी । वादियों ने 1997 का निष्पादन मामला सं. 8 संस्थित किया था जिसमें प्रतिवादी/निर्णीत ऋणियों द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अधीन कतिपय आक्षेप फाइल किए थे जिसमें उन्होंने इस आक्षेप सहित विभिन्न आक्षेप उठाए थे कि 4 कट्ठा 4 धुर्रा भूमि के संबंध में निष्पादन 1993 की हक अपील सं. 68 में पारित डिक्री के बाह्य होगा । तद्नुसार 2005 का प्रकीर्ण मामला 01 संस्थित किया गया था । तथापि, यह प्रकीर्ण मामला तारीख 10 मई, 2007 को खारिज कर दिया गया था । याची ने 2005 के प्रकीर्ण मामला सं. 01 में पारित इस आदेश के विरुद्ध 2007 की रिट याचिका (सिविल) सं. 4663 इस न्यायालय में फाइल की थी, तथापि, वह सफल नहीं हुआ । रिट याचिका तारीख 17 सितंबर, 2010 के आदेश द्वारा मुख्यतया इस आधार पर खारिज की गई थी कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अधीन द्वितीय आवेदन सकारात्मक पूर्व न्याय द्वारा वर्जित था । यह उल्लेख करना उचित होगा कि निर्णीत-ऋणियों ने द्वितीय अपील के लंबन के दौरान सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अधीन आक्षेप फाइल किया था जो तारीख 8 जून, 2004 को खारिज कर दिया गया था । निष्पादन मामले में निर्णीत-ऋणियों को सूचना जारी करने के पश्चात् याची ने तारीख 1 अगस्त, 2007 को सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21, नियम 23(2) के अधीन आक्षेप फाइल किया था । इसके सात वर्ष के पश्चात् उसने तारीख 1 अगस्त, 2007 के आक्षेप में एक अनुपूरक शपथपत्र फाइल किया जिसमें उसने निष्पादन के संबंध में अतिरिक्त आक्षेप उठाए ।

तारीख 6 मई, 2017 के आदेश द्वारा याची के आक्षेप खारिज कर दिए गए । याची ने इसी आदेश के विरुद्ध इस न्यायालय के समक्ष यह रिट याचिका फाइल की है ।

4. याची के विद्वान् काउंसेल ने 1993 की हक अपील सं. 68 में बनाई गई डिक्री का निर्देश करते हुए यह दलील दी कि वाद केवल तारीख 1 अप्रैल, 1989 के करार के संबंध में डिक्री किया गया था जिसमें भूमि का क्षेत्र केवल 4 डेसीमल सम्मिलित था तथापि, वादियों ने 1997 का निष्पादन मामला सं. 8, 4 कट्ठा, 4 धुर्रा भूमि के निष्पादन के लिए संस्थित किया है जो 1993 की हक अपील सं. 68 में तैयार की गई डिक्री के परे है । याची के विद्वान् काउंसेल ने अपनी दलील को साबित करने के लिए द्वितीय अपील में पारित आदेश का निर्देश किया है जिसके अधीन इस न्यायालय ने विधि के प्रथम सारभूत प्रश्न पर चर्चा करते हुए इस प्रकार मत व्यक्त किया है :–

> "10.........अतः यह दस्तावेज एक पश्चात्वर्ती स्थिति का दस्तावेज है जो प्रदर्श-8 को प्रभावित नहीं करता और इसके लिए यह दस्तावेज विद्वान् विचारण द्वारा दिए गए कारण के आधार पर विधिमान्य करार नहीं है........।"

ऊपर निर्दिष्ट दस्तावेज तारीख 21 सितंबर, 1990 का करार है । याची की ओर से बल देकर यह दलील दी गई है कि कोई डिक्री अलंघनीय है और यह केवल ऐसी डिक्री है जिसका निष्पादन, निष्पादन न्यायालय द्वारा किया जा सकता है और डिक्री के परे कुछ भी प्रभावी नहीं किया जा सकता । याची के विद्वान् काउंसेल ने **बरैकवेल आटोमोटिव कम्पोनेंट्स (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड** बनाम **पी. आर. सेलवम अलगप्पन**[1] वाले मामले में दिए गए विनिश्चय का अवलंब लिया है ।

5. उच्चतम न्यायालय ने **बरैकवेल आटोमोटिव कम्पोनेट्स** (पूर्वोक्त) वाले मामले के पैरा 20 में यह मत व्यक्त किया है कि निष्पादन न्यायालय न तो डिक्री के बाहर जा सकता है और न ही अपील न्यायालय के रूप में कार्यवाही कर सकता है अथवा न ही डिक्री के अधीन पक्षकारों के अधिकारों को प्रभावित करने वाला कोई आदेश पारित कर सकता है । तथापि, यह दलील दी गई है कि निष्पादन में आक्षेप केवल ऐसे मामलों में किए जा सकते हैं जहां न्यायालय को अन्तर्निहित अधिकारिता नहीं है या

[1] ए. आई. आर. 2017 एस. सी. 1577 = (2017) 5 एस. सी. सी. 371.

डिक्री अकृत है अथवा ऐसी डिक्री निष्पादित नहीं की जा सकती है । न्यायालय ने पैरा 21 में यह मत व्यक्त किया कि चूंकि विधिक न्यायालय की डिक्री अलंघनीय प्रकृति की होती है इसलिए उसका निष्पादन मात्र आक्षेप पर और अनुचित तथा तात्पर्यित आधारों पर निष्फल नहीं किया जा सकता क्योंकि ऐसे आधारों का उसकी विधिमान्यता पर या डिक्री की निष्पादनीयता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता । याची के विद्वान् काउंसेल ने दलीलें देने के दौरान **वासुदेव धनजीभाई मोदी** बनाम **राजाभाई अब्दुल रहमान और अन्य**[1] वाले मामले में अभिव्यक्त मत का भी अवलंब लिया है जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि निष्पादन न्यायालय को इसकी 'अवधि' के अनुसार डिक्री का निष्पादन करना चाहिए ।

6. इन निर्णयों का सतर्कतापूर्वक परिशीलन करने से यह स्पष्ट होता है कि किसी डिक्री के निष्पादन में मात्र कहने पर आक्षेप ग्रहण नहीं किया जाना चाहिए जिसके लिए डिक्री का निष्पादन ऐसे आधारों पर निष्फल हो जाए जिन आधारों का डिक्री की विधिमान्यता या निष्पादनीयता पर कोई प्रभाव न पड़ता हो । वर्तमान मामले के तथ्यों के निर्देश में इन मामलों में अभिव्यक्त मत वर्तमान संविवाद को विनिश्चित करने के लिए सुसंगत बन जाते हैं । 1993 की हक अपील सं. 68 में पारित आदेश (पैरा नं. 16) स्पष्ट रूप से यह प्रकट करता है कि अपील न्यायालय ने तारीख 1 अप्रैल, 1989 और तारीख 21 सितंबर, 1990 के विक्रय करार को विधिमान्य पाया है । अपील न्यायालय ने इस प्रकार उल्लेख किया है –

> "......... अतः मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि वादीगण प्रतिवादी सं. 1 द्वारा तारीख 1 अप्रैल, 1989 और तारीख 21 सितंबर, 1990 को निष्पादित दस्तावेज के आधार पर संविदा के विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए हकदार हैं ....।"

निस्संदेह 1993 की हक अपील सं. 68 में तैयार की गई डिक्री में केवल तारीख 1 अप्रैल, 1989 के करार का निर्देश किया गया है तथापि, जब 1997 के निष्पादन मामला सं. 8 में अनुरोध को 1990 के हक वाद सं. 152 में अनुसूचित संपत्ति के संदर्भ में देखा जाए और अपील न्यायालय के निर्णय को विशेषतया पैरा सं. 16 को संपूर्णतया पढ़ा जाए जिसमें वादियों को तारीख 1 अप्रैल, 1989 और तारीख 21 सितंबर, 1990 के विक्रय करारों के आधार पर संविदा के विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए हकदार पाया

---

[1] ए. आई. आर. 1970 एस. सी. 1475 = (1970) 1 एस. सी. सी. 670.

गया है, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि याची द्वारा दी गई दलील सूक्ष्म तकनीक पर आधारित है । प्रतिवादियों द्वारा पेश की गई द्वितीय अपील खारिज कर दी गई थी और उक्त आदेश के विरुद्ध पेश की गई विशेष इजाजत याचिका भी खारिज कर दी गई थी । सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 यह उपबंध करती है कि उस वाद में जिसमें डिक्री पारित की गई है, पक्षकारों के बीच उद्‌भूत सभी प्रश्न और निष्पादन, उन्मोचन या डिक्री के समाधान से संबंधित सभी प्रश्नों का डिक्री का निष्पादन करने वाले न्यायालय द्वारा अवधारण किया जाएगा । याची ने तारीख 28 मार्च, 2005 को सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अधीन दिए गए आवेदन में एक बार पुन: वही आक्षेप उठाए हैं जो उसने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21, नियम 23 के अधीन आक्षेप में उठाए थे । जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है कि तारीख 10 मई, 2007 के आदेश द्वारा 2005 का प्रकीर्ण मामला सं. 01 खारिज कर दिया गया था और यह आदेश 2007 की रिट याचिका (सिविल) सं. 4663 की खारिजी के पश्चात् अंतिम बन गया था ।

7. चूंकि यह दलील कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अधीन कार्यवाहियां सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21, नियम 23(2) के अधीन निर्णीतऋणी द्वारा पेश किया गया आक्षेप पृथक्-पृथक् कार्यवाहियां हैं और इन्हें एक सीमा तक ही उठाया जा सकता है तथापि, उस विवाद्यक को सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अधीन आवेदन में विनिर्दिष्ट रूप से उठाया गया है, एक बार पुन: सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21, नियम 23(2) के अधीन एक आक्षेप में उठाना अनुज्ञात नहीं किया जा सकता । याची द्वारा 4 कठा, 4 धुर भूमि के लिए निष्पादन में आक्षेप विनिर्दिष्ट रूप से सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अधीन उठाया गया है और इस विवाद्यक का रिट याचिका खारिज किए जाने के समय विनिश्चय कर दिया गया था ।

8. उपर्युक्त तथ्य संबंधी निष्कर्षों को दृष्टिगत करते हुए तारीख 6 मई, 2017 को पारित आक्षेपित आदेश में कोई अनियमितता नहीं है इसलिए रिट याचिका खारिज की जाती है । 2017 का अंतरिम आवेदन सं. 7932 भी खारिज किया जाता है ।

याचिका खारिज की गई ।

मह.

जॉन ओरांव और अन्य

बनाम

बरदानी उरेन और अन्य

तारीख 29 नवंबर, 2017

न्यायमूर्ति श्री चन्द्रशेखर

साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1) – धारा 65 – द्वितीयक साक्ष्य – वाद का अन्तिम बहस के लिए नियतन – बहस के प्रक्रम पर दस्तावेज़ साक्ष्य में पेश किया जाना – शिकायत की सत्यापित फोटो प्रति को साक्ष्य में स्वीकार किए जाने के लिए आवेदन – खारिजी – दस्तावेज 'लोक दस्तावेज' न होने के कारण बहस के प्रक्रम पर स्वीकार न किया जाना न्यायोचित है ।

याची 2007 के हक वाद सं. 10 में तारीख 22 अप्रैल, 2017 को पारित उस आदेश से व्यथित हुआ है जिसके द्वारा प्रतिवादी सं. 3 द्वारा पुलिस अधीक्षक, गुमला के समक्ष पेश की गई शिकायत की सत्यापित प्रति को चिह्नांकित करने के लिए फाइल किया गया आवेदन खारिज किया गया है । अत: याची ने इस न्यायालय में समावेदन किया है । 2007 का हक वाद सं. 10 जॉन ओरांव और अन्यों द्वारा संस्थित किया गया था । वाद अन्तर्गत संपत्तियों के ऊपर वादी के अधिकार, हक, हित और कब्जे की घोषणा की डिक्री के लिए वाद संस्थित किया गया था । तारीख 7 नवंबर, 2006 के आदेश द्वारा 2006-07 के अनुमति मामला सं. 516 में अनुमति दी गई थी और इसलिए प्रतिवादी सं. 1 और 2 द्वारा प्रतिवादी सं. 3 के हक में निष्पादित तारीख 8 दिसंबर, 2006 के विलेख को भी वादियों द्वारा आक्षेपित किया गया है । वादियों ने यह अभिवचन किया है कि पक्षकार रूढ़िगत विधि से विनियमित होते हैं जिसके अधीन कोई विधवा अपने पति द्वारा छोड़ी गई संपत्ति विरासत में पाने की हकदार नहीं है । वह केवल जीवन पर्यन्त या पुनर्विवाह करने तक भरणपोषण की मांग कर सकती है । यह अभिवाक् किया गया है कि गुमला के खार्यापाड़ा स्थित खाता सं. 90 के अधीन उल्लिखित भूमि साइमन ओरांव, नायमन ओरांव, कायला ओरांव, सोमा ओरांव, चारो ओरांव और बूडा ओरांव के

नामों में स्वामी होने के रूप में उल्लिखित है । वादियों ने वंशावली तालिका द्वारा यह अभिवचन किया है कि किस प्रकार वाद की सूची में उल्लिखित भूमि उनके कब्जे में आई है । यह अभिवचन किया गया है कि प्रतिवादी सं. 1 और 2 का कुटुंब से कोई संबंध नहीं है और प्रतिवादी सं. 3 ने जिसने एक मुस्लिम से विवाह कर लिया है, अनुसूचित जनजाति के रूप में अपनी प्रास्थिति खो दी है । प्रतिवादियों ने लिखित कथन फाइल करके वाद का विरोध किया था । वाद के लंबन के दौरान वादियों द्वारा एक आवेदन फाइल किया गया था जिसमें उन्होंने मूल दस्तावेजों को प्रस्तुत करने की मांग की थी । यह दस्तावेज एक शिकायत है जो प्रतिवादी सं. 3 द्वारा पुलिस अधीक्षक, गुमला को पेश की गई थी जिसमें डकैती के एक मामले में उसके पति के मिथ्या अन्तर्वलन का आरोप लगाया गया था । तारीख 23 फरवरी, 2010 के आदेश द्वारा मूल आवेदन को पेश कराने के लिए फाइल किया गया आवेदन मंजूर किया गया था तथापि, यह पेश नहीं किया गया । इस दौरान 2007 के हक वाद सं. 10 में आगे कार्यवाही की गई और पक्षकारों ने अपना-अपना साक्ष्य प्रस्तुत किया । तारीख 5 मई, 2015 के आदेश द्वारा प्रतिवादियों का साक्ष्य बंद किया गया था और वाद तारीख 19 मई, 2015 को बहस के लिए नियत किया गया था । तारीख 11 जुलाई, 2016 और तारीख 16 जुलाई, 2016 को प्रतिवादियों की ओर से बहस सुने जाने के पश्चात् वादी द्वारा 16 जुलाई, 2016 को सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 151 के अधीन एक आवेदन फाइल किया गया था जिसमें उसने आवेदन की सत्यापित प्रति को चिह्नांकित करने और इसे द्वितीय साक्ष्य मानने के लिए अनुरोध किया था । यह आवेदन तारीख 17 जनवरी, 2017 को अदम-पैरवी में खारिज कर दिया गया था । इसके पश्चात् तारीख 10 अप्रैल, 2017 और तारीख 13 अप्रैल, 2017 को प्रतिवादियों की पुनः बहस सुनी गई थी । इस प्रक्रम पर वादियों ने तारीख 13 जुलाई, 2017 को वाद में आवेदन की सत्यापित प्रति को चिह्नांकित करने के लिए समान अनुरोध के साथ दूसरा आवेदन फाइल किया । विचारण न्यायाधीश द्वारा तारीख 22 अप्रैल, 2017 के आक्षेपित आदेश द्वारा आवेदन खारिज कर दिया गया । अतः उक्त आदेश को आक्षेपित करते हुए यह रिट याचिका फाइल की गई । रिट याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – 2007 के हक वाद सं. 10 में वादपत्र के परिशीलन मात्र से यह प्रकट होता है कि इसमें प्रतिवादी सं. 3 द्वारा पुलिस अधीक्षक,

गुमला के समक्ष प्रस्तुत आवेदन का कोई निर्देश नहीं है । वादियों ने यह दावा किया है कि प्रतिवादी सं. 3 ने अनुसूचित जनजाति समुदाय से संबंधित अपनी प्रास्थिति खो दी है जिसके लिए वादियों द्वारा साक्ष्य पेश किया जाना आवश्यक है । जब एक बार यह पाया गया हो कि पक्षकारों ने अपना साक्ष्य बंद कर दिया है तो विधि में इसका यह अर्थ है कि पक्षकारों ने विचारण के दौरान अपना सभी साक्ष्य पेश कर दिया है । मात्र इस आधार पर कि दस्तावेज मौजूद है, ऐसे दस्तावेज की जानकारी मिलने पर पक्षकारों के समुचित अभिवचनों के बिना ऐसा दस्तावेज को पेश करने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जा सकता और वह भी बहस के प्रक्रम पर, सिवाय वहां जहां ऐसा दस्तावेज लोक प्रवर्ग की श्रेणी के अन्तर्गत आता हो और इसकी वाद में अन्तर्वलित संविवाद में कतिपय सुसंगतता हो । स्वीकृततः आवेदन की सत्यापित प्रति लोक दस्तावेज की श्रेणी के अन्तर्गत नहीं आती । यह हो सकता है कि प्रतिवादी सं. 3 द्वारा प्रस्तुत आवेदन की वाद में अन्तर्वलित संविवाद के लिए कतिपय सुसंगतता हो, तथापि, वादपत्र में समुचित अभिवचनों के बिना इस दस्तावेज को विचारण न्यायाधीश द्वारा अभिलेख पर ठीक ही स्वीकार नहीं किया गया है । तारीख 23 फरवरी, 2010 का आदेश जिसके द्वारा मूल आवेदन पुलिस अधीक्षक, गुमला के कार्यालय से मंगाया गया था, ऐसे लोक दस्तावेज के रूप में नहीं माना जा सकता जो अन्यथा भी लोक दस्तावेज नहीं है । उपर्युक्त तथ्यों को दृष्टिगत करते हुए तारीख 22 अप्रैल, 2017 के आक्षेपित आदेश में कोई अनियमितता नहीं है इसलिए रिट याचिका खारिज की जाती है । (पैरा 4 और 5)

आरंभिक (सिविल) रिट अधिकारिता : 2017 की रिट याचिका (सिविल) सं. 3206.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन सिविल रिट याचिका ।

याची की ओर से श्री अरूण कुमार

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री रवि प्रकाश, वीरेन्द्र कुमार और (सुश्री) सुनीता कुमारी

न्यायमूर्ति श्री चन्द्रशेखर – याची 2007 के हक वाद सं. 10 में तारीख 22 अप्रैल, 2017 को पारित उस आदेश से व्यथित हुआ है जिसके द्वारा प्रतिवादी सं. 3 द्वारा पुलिस अधीक्षक, गुमला के समक्ष पेश की गई

शिकायत की सत्यापित प्रति को चिह्नांकित करने के लिए फाइल किया गया आवेदन खारिज किया गया है । अतः याची ने इस न्यायालय में समावेदन किया है ।

2. 2007 का हक वाद सं. 10 जॉन ओरांव और अन्यों द्वारा संस्थित किया गया था । वाद अन्तर्गत संपत्तियों के ऊपर वादी के अधिकार, हक, हित और कब्जे की घोषणा की डिक्री के लिए वाद संस्थित किया गया था । तारीख 7 नवंबर, 2006 के आदेश द्वारा 2006-07 के अनुमति मामला सं. 516 में अनुमति दी गई थी और इसलिए प्रतिवादी सं. 1 और 2 द्वारा प्रतिवादी सं. 3 के हक में निष्पादित तारीख 8 दिसंबर, 2006 के विलेख को भी वादियों द्वारा आक्षेपित किया गया है । वादियों ने यह अभिवचन किया है कि पक्षकार रूढ़िगत विधि से विनियमित होते हैं जिसके अधीन कोई विधवा अपने पति द्वारा छोड़ी गई संपत्ति विरासत में पाने की हकदार नहीं है । वह केवल जीवन पर्यन्त या पुनर्विवाह करने तक भरणपोषण की मांग कर सकती है । यह अभिवाक् किया गया है कि गुमला के खार्यापाड़ा स्थित खाता सं. 90 के अधीन उल्लिखित भूमि साइमन ओरांव, नायमन ओरांव, कायला ओरांव, सोमा ओरांव, चारो ओरांव और बूडा ओरांव के नामों में स्वामी होने के रूप में उल्लिखित है । वादियों ने वंशावली तालिका द्वारा यह अभिवचन किया है कि किस प्रकार वाद की सूची में उल्लिखित भूमि उनके कब्जे में आई है । यह अभिवचन किया गया है कि प्रतिवादी सं. 1 और 2 का कुटुंब से कोई संबंध नहीं है और प्रतिवादी सं. 3 ने जिसने एक मुस्लिम से विवाह कर लिया है, अनुसूचित जनजाति के रूप में अपनी प्रास्थिति खो दी है । प्रतिवादियों ने लिखित कथन फाइल करके वाद का विरोध किया था । वाद के लंबन के दौरान वादियों द्वारा एक आवेदन फाइल किया गया था जिसमें उन्होंने मूल दस्तावेजों को प्रस्तुत करने की मांग की थी । यह दस्तावेज एक शिकायत है जो प्रतिवादी सं. 3 द्वारा पुलिस अधीक्षक, गुमला को पेश की गई थी जिसमें डकैती के एक मामले में उसके पति के मिथ्या अन्तर्वलन का आरोप लगाया गया था । तारीख 23 फरवरी, 2010 के आदेश द्वारा मूल आवेदन को पेश कराने के लिए फाइल किया गया आवेदन मंजूर किया गया था तथापि, यह पेश नहीं किया गया । इस दौरान 2007 के हक वाद सं. 10 में आगे कार्यवाही की गई और पक्षकारों ने अपना-अपना साक्ष्य प्रस्तुत किया । तारीख 5 मई, 2015 के आदेश द्वारा प्रतिवादियों का साक्ष्य बंद किया गया था और वाद

तारीख 19 मई, 2015 को बहस के लिए नियत किया गया था । तारीख 11 जुलाई, 2016 और तारीख 16 जुलाई, 2016 को प्रतिवादियों की ओर से बहस सुने जाने के पश्चात् वादी द्वारा 16 जुलाई, 2016 को सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 151 के अधीन एक आवेदन फाइल किया गया था जिसमें उसने आवेदन की सत्यापित प्रति को चिह्नांकित करने और इसे द्वितीय साक्ष्य मानने के लिए अनुरोध किया था । यह आवेदन तारीख 17 जनवरी, 2017 को अदम-पैरवी में खारिज कर दिया गया था । इसके पश्चात् तारीख 10 अप्रैल, 2017 और तारीख 13 अप्रैल, 2017 को प्रतिवादियों की पुन: बहस सुनी गई थी । इस प्रक्रम पर वादियों ने तारीख 13 जुलाई, 2017 को वाद में आवेदन की सत्यापित प्रति को चिह्नांकित करने के लिए समान अनुरोध के साथ दूसरा आवेदन फाइल किया । विचारण न्यायाधीश द्वारा तारीख 22 अप्रैल, 2017 के आक्षेपित आदेश द्वारा आवेदन खारिज कर दिया गया ।

3. याचियों के विद्वान् श्री अरूण कुमार ने 2007 के हक वाद सं. 10 में वादपत्र के पैरा सं. 12 का निर्देश करते हुए यह दलील दी कि वादियों ने यह दावा किया है कि चूंकि प्रतिवादी सं. 3 ने एक मुस्लिम व्यक्ति से विवाह कर लिया है और इसलिए उसने अनुसूचित जनजाति के रूप में अपनी प्रास्थिति खो दी है और इसलिए वादियों द्वारा इस दस्तावेज को अभिलेख पर रखने के लिए पर्याप्त आधार प्राप्त कर लिया है । याचियों के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि प्रतिवादी सं. 3 द्वारा प्रस्तुत किए गए आवेदन की सत्यापित प्रति से वादियों के इस कथन का समर्थन होता है कि प्रतिवादी सं. 3 ने एक मुस्लिम व्यक्ति से विवाह कर लिया है और इसलिए यह एक ऐसा सुसंगत दस्तावेज है जो न्यायालय को वाद में अन्तर्वलित संविवाद को प्रभावी रूप से विनिश्चित करने के लिए सहायता करता है । यह भी दलील दी गई है कि जब एक बार मूल आवेदन को मंगाने के लिए आवेदन तारीख 23 फरवरी, 2010 को मंजूर कर लिया गया था तो साक्ष्य अधिनियम की धारा 65 के अधीन उपबंध लागू होगा और न्यायालय इस बात के लिए कर्तव्याबद्ध है कि वह प्रतिवादी सं. 3 के आवेदन की सत्यापित प्रति अभिलेख पर मंजूर करे ।

4. 2007 के हक वाद सं. 10 में वादपत्र के परिशीलन मात्र से यह प्रकट होता है कि इसमें प्रतिवादी सं. 3 द्वारा पुलिस अधीक्षक, गुमला के समक्ष प्रस्तुत आवेदन का कोई निर्देश नहीं है । वादियों ने यह दावा किया

है कि प्रतिवादी सं. 3 ने अनुसूचित जनजाति समुदाय से संबंधित अपनी प्रास्थिति खो दी है जिसके लिए वादियों द्वारा साक्ष्य पेश किया जाना आवश्यक है । जब एक बार यह पाया गया हो कि पक्षकारों ने अपना साक्ष्य बंद कर दिया है तो विधि में इसका यह अर्थ है कि पक्षकारों ने विचारण के दौरान अपना सभी साक्ष्य पेश कर दिया है । मात्र इस आधार पर कि दस्तावेज मौजूद है, ऐसे दस्तावेज की जानकारी मिलने पर पक्षकारों के समुचित अभिवचनों के बिना ऐसा दस्तावेज को पेश करने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जा सकता और वह भी बहस के प्रक्रम पर, सिवाय वहां जहां ऐसा दस्तावेज लोक प्रवर्ग की श्रेणी के अन्तर्गत आता हो और इसकी वाद में अन्तर्वलित संविवाद में कतिपय सुसंगतता हो । स्वीकृततः आवेदन की सत्यापित प्रति लोक दस्तावेज की श्रेणी के अन्तर्गत नहीं आती । यह हो सकता है कि प्रतिवादी सं. 3 द्वारा प्रस्तुत आवेदन की वाद में अन्तर्वलित संविवाद के लिए कतिपय सुसंगतता हो, तथापि, वादपत्र में समुचित अभिवचनों के बिना इस दस्तावेज को विचारण न्यायाधीश द्वारा अभिलेख पर ठीक ही स्वीकार नहीं किया गया है । तारीख 23 फरवरी, 2010 का आदेश जिसके द्वारा मूल आवेदन पुलिस अधीक्षक, गुमला के कार्यालय से मंगाया गया था, ऐसे लोक दस्तावेज के रूप में नहीं माना जा सकता जो अन्यथा भी लोक दस्तावेज नहीं है ।

5. उपर्युक्त तथ्यों को दृष्टिगत करते हुए तारीख 22 अप्रैल, 2017 के आक्षेपित आदेश में कोई अनियमितता नहीं है इसलिए रिट याचिका खारिज की जाती है ।

रिट याचिका खारिज की गई ।

मह.

मीनू देवी

बनाम

अमित कुमार

तारीख 12 मार्च, 2018

न्यायमूर्ति अपरेश कुमार सिंह और न्यायमूर्ति रत्नाकर भेंगड़ा

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25) – धारा 13(1) (iक) (iख) – विवाह-विच्छेद के लिए अर्जी – पक्षकारों के बीच 7 वर्ष से अधिक की अवधि से शारीरिक संबंध न होने का प्रकथन – पति द्वारा पत्नी के विरुद्ध क्रूरता बरतने और पति का परित्यजन करने का आरोप लगाया जाना – पत्नी द्वारा पति के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 498क के अधीन संस्थित मामले में दोषमुक्ति का आदेश – पत्नी द्वारा पति को मिथ्या मामले में अन्तर्वलित किया जाना क्रूरता बरतने के बराबर है – विवाह को पुनर्स्थापित करने से कोई प्रयोजन पूरा नहीं होगा – निचले न्यायालय द्वारा पारित विवाह-विच्छेद की डिक्री में हस्तक्षेप करना उचित नहीं होगा ।

वादी के पक्षकथनानुसार उसका विवाह हिन्दू रीति और रूढ़ियों के अनुसार वर्ष 2004 में हुआ था । गौने (विदाई) के पश्चात् पक्षकार सामान्य वैवाहिक जीवन व्यतीत करने लगे और उनके विवाह से दो जुड़वां बच्चे पैदा हुए । शीघ्र ही पति ने यह महसूस किया कि उसकी पत्नी का व्यवहार अच्छा नहीं है और वह बात-बात में क्रोधित हो जाती है । वह ग्रामीण जीवन की अभ्यस्त नहीं है । अतः वादी ने अपनी वित्तीय स्थिति के कारण क्योंकि वह कहीं नियोजित नहीं था, पत्नी के साथ रिश्ता निभाने में अपनी असमर्थता व्यक्त की । उसकी पत्नी ने अपने नातेदारों के साथ वादी को धमकी दी जिसके कारण पति द्वारा उपखंड अधिकारी, गोड्डा के समक्ष एक सनहा फाइल किया गया था । इससे उसकी पत्नी नाराज हो गई और उसने वादी-पति पर हमला करना आरंभ कर दिया । वर्ष 2007 में उसकी पत्नी ने दो जुड़वां बच्चों को जन्म दिया जिनमें से एक को बचाया नहीं जा सका । उसकी पत्नी के नातेदारों द्वारा वादी-पति के विरुद्ध आरोप लगाए गए थे । वादी की पत्नी ने वादी-पति से दुर्व्यवहार किया और धमकी दी । यह अभिकथित किया गया है कि उसकी पत्नी ने दो वर्ष से अधिक की

अवधि से उसका परित्याग कर दिया था और वह वादी-पति के साथ नहीं रही थी । पत्नी अपने दाम्पत्य अधिकार को पूरा नहीं करना चाहती थी । वादी-पति ने प्रतिवादी-पत्नी का मानसिक संतुलन ठीक न होने की शिकायत की क्योंकि वह मनोवेदलता से पीड़ित थी । वाद तब संस्थित किया गया था जब पत्नी ने साथ रहने से इनकार कर दिया जिसके कारण वाद हेतुक उत्पन्न हुआ । वादी-पति ने परित्यजन, मानसिक असंतुलन और दो वर्ष से अधिक अवधि तक साथ न रहने के आधार पर विवाह के विघटन के लिए अनुरोध किया और यह भी शिकायत की कि विवाह चिंता का कारण बनने, मानसिक व्यथा पहुंचने और प्रतिवादी-पत्नी द्वारा क्रूरता बरतने के तथ्य को दृष्टिगत करते हुए व्यावहारिक रूप से और संवेदनात्मक रूप से शून्य हो गया है । उसने विवाह के विघटन और बच्चे की अभिरक्षा के लिए अनुरोध किया है । पक्षकारों का विवाह वादी-पति के अनुरोध पर 2011 के वैवाहिक (विवाह-विच्छेद) मामला सं. 09 में विद्वान् प्रधान न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय गोडकला द्वारा तारीख 6 अक्तूबर, 2016 को पारित आक्षेपित निर्णय द्वारा विघटित किया गया है । व्यथित पक्षकार अर्थात् प्रतिवादी-पत्नी द्वारा यह अपील फाइल की गई है । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – प्रत्यर्थी-पति के विद्वान् काउंसेल ने आक्षेपित निर्णय के समर्थन में दलीलें देते हुए न्यायालय द्वारा क्रूरता और परित्यजन के बारे में निकाले गए निष्कर्षों का समर्थन किया है । उन्होंने यह दलील दी है कि प्रतिवादी द्वारा अपने पति के विरुद्ध दहेज की मांग और वैवाहिक क्रूरता का अभिकथन करते हुए भारतीय दंड संहिता की धारा 498क के अधीन एक मिथ्या मामला संस्थित किया था । विद्वान् न्यायिक मजिस्ट्रेट के न्यायालय ने एकमात्र अभियुक्त-पति को आरोपों से दोषमुक्त कर दिया क्योंकि अभियोजन सभी युक्तियुक्त संदेहों के परे अपना पक्षकथन साबित करने में विफल रहा था । इस प्रकार का मिथ्या आरोप स्पष्ट रूप से पत्नी की ओर से क्रूरता के तत्व को साबित करता है । अभिलेख पर के साक्ष्य से यह भी साबित होता है कि वादी को उसकी पत्नी द्वारा सतत् रूप से शारीरिक संबंध बनाने से इनकार किया गया था । अतः पक्षकारों के बीच विवाह नाममात्र का था इसलिए पक्षकारों के बीच कोई संवेदनात्मक, शारीरिक और मानसिक लगाव नहीं था । आक्षेपित निर्णय उचित आधारों के साथ दिया गया है और इन परिस्थितियों में उसमें कोई हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं है । अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है

कि विद्वान् कुटुंब न्यायालय ने अपीलार्थी-पत्नी द्वारा संस्थित दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के अधीन कार्यवाही में, जो 2016 के दांडिक प्रकीर्ण मामला सं. 189 के रूप में दर्ज हुआ था, पत्नी और बच्चे के हक में 5 हजार रुपए की भरणपोषण राशि अधिनिर्णीत की है । प्रत्यर्थी नियमित रूप से उक्त धनराशि का संदाय कर रहा है और यह धनराशि न देने की स्थिति में अपीलार्थी तुरन्त दंडात्मक कार्यवाही करने के लिए धमकी देती है । न्यायालय ने पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों की दलीलों पर विचार किया और अभिलेख पर के सुसंगत तात्विक साक्ष्य का जिसका पक्षकारों के काउंसेलों द्वारा अवलंब लिया गया है, विश्लेषण किया । न्यायालय को प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा अपीलार्थी-पत्नी द्वारा की गई वैवाहिक क्रूरता के अभिवाक् के बारे दी गई दलील में पर्याप्त बल प्रतीत होता है । प्रथमतः कुटुंब न्यायालय ने अभिलेख पर के साक्ष्य के आधार पर पक्षकारों के बीच 7 वर्ष की अवधि से शारीरिक संबंध न होने का निष्कर्ष निकाला है । द्वितीयतः, अपीलार्थी-पत्नी द्वारा वर्ष 2012 में भारतीय दंड संहिता की धारा 498क के अधीन दांडिक मामले को संस्थित करने से यह उपदर्शित होता है कि पक्षकारों के बीच काफी समय से नातेदारी ठीक नहीं है । ऐसी परिस्थितियों में शारीरिक संबंध की बहुत कम ही संभावना होती है जिसके बारे में वादी और उसके साक्षियों द्वारा भी नकारात्मक रूप में बताया गया है । यह बात आश्चर्यजनक है कि भारतीय दंड संहिता की धारा 498-क के अधीन एक मामला संस्थित किए जाने के बावजूद इस न्यायालय के समक्ष की अपीलार्थी/पत्नी ने वादी के उसी मकान के एक कक्ष में रहना पसन्द किया । यदि दहेज की अवैध मांग की गई थी और पति द्वारा क्रूरता बरती गई थी तो अपीलार्थी के लिए इस बात की संभावना थी कि वह अपने माता-पिता के साथ रहे । तथापि, अपीलार्थी ने वादी के मकान के एक कक्ष में रहना पसंद किया और उसके बावजूद उसने वादी के विरुद्ध दांडिक कार्यवाही संस्थित की जिसमें अंततः वादी की दोषमुक्ति हुई । अतः यह कहा जा सकता है कि पत्नी द्वारा पति के विरुद्ध मिथ्या आरोप लगाकर दांडिक अभियोजन किया गया था । इन परिस्थितियों में प्रत्यर्थी-पति का पत्नी के विरुद्ध अभिकथित क्रुद्ध हो जाने के व्यवहार का आधार और प्रतिवादी-पत्नी द्वारा पति पर मिथ्या आरोप लगाने का आधार न्यायोचित था । मामले की सम्पूर्ण परिस्थितियों और इस तथ्य को दृष्टिगत करते हुए कि आक्षेपित निर्णय पारित किए जाने तक पिछले 7 वर्षों की अवधि से पक्षकारों के बीच कोई शारीरिक संबंध नहीं बने हैं और

इस बात को दृष्टिगत करते हुए कि प्रत्यर्थी की भारतीय दंड संहिता की धारा 498क के अधीन अपीलार्थी-पत्नी द्वारा संस्थित एक मिथ्या दांडिक मामले में दोषमुक्ति हुई है, जहां पक्षकारों के बीच उनकी नातेदारी नामामात्र की रह गई है, विवाह को बहाल करना निरर्थक प्रयोग होगा । उपर्युक्त की गई चर्चा को दृष्टिगत करते हुए और ऊपर अभिलिखित कारणों को दृष्टिगत करते हुए न्यायालय को विद्वान् कुटुंब न्यायालय के निर्णय में हस्तक्षेप करने के लिए कोई कारण और प्रयोजन प्रतीत नहीं होता । तद्नुसार अपील खारिज की जाती है । अपीलार्थी इस बात के लिए स्वतंत्र है कि वह स्थायी भरणपोषण के लिए हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 24 के निबंधनों में संबंधित कुटुंब न्यायालय में समावेदन कर सकती है । (पैरा 10, 11, 12, 13 और 14)

अनुसरित निर्णय

		पैरा
[2014]	ए. आई. आर. 2014 एस. सी. 2881 = (2014) 7 एस. सी. सी. 640 : **मलाठी रवि, एम. डी.** बनाम **बी. वी. रवि, एम. डी.** ;	12
[2012]	ए. आई. आर. 2012 एस. सी. 2586 : **विश्वनाथ सीता राम अग्रवाल** बनाम **साहू सरला विश्वनाथ अग्रवाल** ।	12

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2017 की अपील सं. 10.

2017 की मूल डिक्री संख्या 10 के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्रीमती आभा वर्मा

प्रत्यर्थियों की ओर से मैसर्स ए. के. सिन्हा, विजय शंकर झा और मनीष कुमार

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति अपरेश कुमार सिंह और न्यायमूर्ति रत्नाकर भेंगड़ा द्वारा दिया गया ।

निर्णय

पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुना गया ।

2. पक्षकारों का विवाह वादी-पति के अनुरोध पर 2011 के वैवाहिक (विवाह-विच्छेद) मामला सं. 09 में विद्वान् प्रधान न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय गोडकला द्वारा तारीख 6 अक्तूबर, 2016 को पारित आक्षेपित निर्णय द्वारा विघटित किया गया है । व्यथित पक्षकार अर्थात् प्रतिवादी-पत्नी द्वारा यह अपील फाइल की गई है ।

3. वादी के पक्षकथनानुसार उसका विवाह हिन्दू रीति और रूढ़ियों के अनुसार वर्ष 2004 में हुआ था । गौने (विदाई) के पश्चात् पक्षकार सामान्य वैवाहिक जीवन व्यतीत करने लगे और उनके विवाह से दो जुड़वां बच्चे पैदा हुए । शीघ्र ही पति ने यह महसूस किया कि उसकी पत्नी का व्यवहार अच्छा नहीं है और वह बात-बात में क्रोधित हो जाती है । वह ग्रामीण जीवन की अभ्यस्त नहीं है । अतः वादी ने अपनी वित्तीय स्थिति के कारण क्योंकि वह कहीं नियोजित नहीं था, पत्नी के साथ रिश्ता निभाने में अपनी असमर्थता व्यक्त की । उसकी पत्नी ने अपने नातेदारों के साथ वादी को धमकी दी जिसके कारण पति द्वारा उपखंड अधिकारी, गोड्डा के समक्ष एक सनहा फाइल किया गया था । इससे उसकी पत्नी नाराज हो गई और उसने वादी-पति पर हमला करना आरंभ कर दिया । वर्ष 2007 में उसकी पत्नी ने दो जुड़वां बच्चों को जन्म दिया जिनमें से एक को बचाया नहीं जा सका । उसकी पत्नी के नातेदारों द्वारा वादी-पति के विरुद्ध आरोप लगाए गए थे । वादी की पत्नी ने वादी-पति से दुर्व्यवहार किया और धमकी दी । यह अभिकथित किया गया है कि उसकी पत्नी ने दो वर्ष से अधिक की अवधि से उसका परित्याग कर दिया था और वह वादी-पति के साथ नहीं रही थी । पत्नी अपने दाम्पत्य अधिकार को पूरा नहीं करना चाहती थी । वादी-पति ने प्रतिवादी-पत्नी का मानसिक संतुलन ठीक न होने की शिकायत की क्योंकि वह मनोवेदलता से पीड़ित थी । वाद तब संस्थित किया गया था जब पत्नी ने साथ रहने से इनकार कर दिया जिसके कारण वाद हेतुक उत्पन्न हुआ । वादी-पति ने परित्यजन, मानसिक असंतुलन और दो वर्ष से अधिक अवधि तक साथ न रहने के आधार पर विवाह के विघटन के लिए अनुरोध किया और यह भी शिकायत की कि विवाह चिंता का कारण बनने, मानसिक व्यथा पहुंचने और प्रतिवादी-पत्नी द्वारा क्रूरता बरतने के तथ्य को दृष्टिगत करते हुए व्यावहारिक रूप से और संवेदनात्मक रूप से शून्य हो गया है । उसने विवाह के विघटन और बच्चे की अभिरक्षा के लिए अनुरोध किया है ।

4. प्रतिवादी-पत्नी ने उपस्थित होकर तारीख 30 जुलाई, 2012 को अपना लिखित कथन फाइल किया । उसने वादी-पति द्वारा लगाए गए सभी आरोपों से इनकार किया । उसके अनुसार विवाह-विच्छेद की डिक्री पाने के लिए कोई विधिमान्य वाद हेतुक मौजूद नहीं है । उसने यह अभिकथित किया कि वादी-पति अपनी माता, भाभी (सिस्टर इन ला) और भतीजे के साथ मिलकर उसे मारता-पीटता है । उसके पति ने दहेज में पांच लाख रुपए की मांग की थी और पांच लाख रुपए देने से इनकार करने पर उस पर निर्दयतापूर्वक हमला किया गया था । तारीख 15 दिसंबर, 2006 को उत्पन्न उसके दो जुड़वां बच्चों में से एक पति द्वारा किए गए व्यवहार के कारण जीवित नहीं रह सका । उसने यह कथन किया कि उसके पति के पास फिरोज़पुर (बाराहाट) के मुख्य विकसित बाजार में 10 कक्षों का बड़ा बाज़ार काम्पलैक्स है और उसके पास लगभग 6 बीघा भूमि भी है जिससे उसे प्रति मास 25,000/- रुपए की आय होती है । प्रतिवादी नियमित रूप से अपनी ससुराल आती-जाती रही और वह अपने माता पिता के पास भी गई और इसलिए दुर्व्यवहार करने और धमकी देने का कोई प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता है । वादी और उसके कुटुंब के सदस्य उससे दहेज की मांग करते हैं और उसकी हत्या करने की धमकी देते हैं । अत: वाद खारिज किए जाने योग्य है क्योंकि वादी को स्वयं अपनी गलतियों का फायदा अनुज्ञात नहीं किया जा सकता ।

5. विद्वान् कुटुंब न्यायालय ने पक्षकारों के अभिवचनों के आधार पर निम्नलिखित विवाद्यक विरचित किया :–

> "क्या वादी अमित कुमार प्रतिवादी-मीनू देवी द्वारा की गई क्रूरता और अधित्यजन के आधार पर हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13(1) (i-क) (i-ख) के अधीन अपने विवाह के विघटन के लिए विवाह-विच्छेद की डिक्री पाने का हकदार है या नहीं ?"

6. वादी द्वारा 5 साक्षियों की परीक्षा कराई गई, जबकि प्रतिवादी द्वारा स्वयं सहित 3 साक्षियों की परीक्षा कराई गई । पी. डब्ल्यू. 1 राज नारायण राम ने प्रतिवादी-पत्नी द्वारा किए गए दुर्व्यवहार के बारे में अभिसाक्ष्य दिया है जिसके परिणामस्वरूप वादी द्वारा 2007-08 में उपखंड मजिस्ट्रेट के न्यायालय में सनहा संस्थित किया गया । उसने यह भी कथन किया है कि प्रतिवादी द्वारा वादी और उसके कुटुंब के सदस्यों के विरुद्ध दहेज की मांग के लिए एक मिथ्या मामला फाइल किया गया था । उसके कथनानुसार

प्रतिवादी मानसिक रूप से विक्षिप्त है और इसलिए वादी ने उसे यह बताया था कि उसका प्रतिवादी के साथ पिछले छह वर्षों से कोई शारीरिक संबंध नहीं हुआ था । उसका मकान वादी के मकान के ठीक पीछे है । उसने यह भी अभिसाक्ष्य दिया है कि प्रतिवादी अक्सर आती-जाती थी । वादी की संपत्ति संयुक्त संपति है । पी. डब्ल्यू. 2 राजीव लोचन ने दोनों पक्षों से जान-पहचान होने का दावा किया है । उसने वादी के पक्षकथन के हक में अभिसाक्ष्य दिया है । उसके अनुसार दो जुड़वां बच्चों में से एक बच्चे की जन्म लेने के पश्चात् मृत्यु हो गई थी । प्रतिवादी गुस्सैल प्रकृति की है और वह वादी को धमकी देती है और गाली-गलौज करती है । उसने उपखंड मजिस्ट्रेट के न्यायालय में सनहा संस्थित करने के बारे में भी अभिसाक्ष्य दिया है । उसने यह भी अभिसाक्ष्य दिया है कि वादी पिछले 6 वर्षों से अपनी पत्नी के साथ नहीं रह रहा था । इस साक्षी को उन्मोचित कर दिया गया था क्योंकि प्रतिवादी की ओर से उसकी प्रतिपरीक्षा करने के लिए कोई उपस्थित नहीं हुआ था । पी. डब्ल्यू. 3 राजेन्द्र मंडल ने भी दोनों पक्षकारों से जान-पहचान होने का दावा किया है और उसने वादी के पक्षकथन के समर्थन में समान रूप में अभिसाक्ष्य दिया है । उसने यह भी कथन किया है कि वादी के प्रतिवादी के साथ पिछले 6 वर्षों से कोई शारीरिक संबंध नहीं हुए थे । वादी की पुत्री प्रतिवादी के माता-पिता के मकान में रहकर अध्ययन कर रही है । पी. डब्ल्यू. 4 नागेन्द्र प्रसाद यादव ने अपने अभिसाक्ष्य में यह कहा है कि वर्ष 2004 में पक्षकारों के विवाह के पश्चात् दो जुड़वां पुत्रों का जन्म हुआ था जिनमें से एक की मृत्यु हो गई थी । प्रतिवादी के कुटुंब ने यह आरोप लगाया था कि एक बच्चे की मृत्यु वादी द्वारा सम्यक् रूप से देखभाल न करने के कारण हुई थी । उसने यह भी अभिसाक्ष्य दिया है कि प्रतिवादी शीघ्र नाराज़ हो जाती है और वादी को धमकियां देती है और गाली-गलौज करती है । उसने यह भी कथन किया है कि वादी के प्रतिवादी के साथ पिछले 6 वर्षों से कोई शारीरिक संबंध नहीं हुए हैं । उसने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह कहा है कि उसकी लगभग 30 वर्षों से वादी के साथ मित्रता है । इस साक्षी का मकान वादी के मकान से 3 किलोमीटर दूर है । वादी नियोजित नहीं है । उसने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह भी अभिसाक्ष्य दिया है कि प्रतिवादी ने वादी के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 498क के अधीन एक मामला फाइल किया था तथापि, वादी ने दहेज की कोई मांग नहीं की थी । पी. डब्ल्यू. 5 अमित कुमार ने भी उक्त साक्ष्य का समर्थन करते हुए वादी के पक्षकथन का समर्थन किया

है और यह कथन किया है कि वादी के वर्ष 2009 से शारीरिक संबंध नहीं बने हैं । उसने प्रतिवादी द्वारा वादी के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 498क के अधीन एक मामला संस्थित करने के बारे में भी कथन किया है । प्रतिवादी ने डी. डब्ल्यू. 1 के रूप में अपनी परीक्षा कराई है । उसने यह अभिकथित किया है कि उसे 5 लाख रुपए की नगदी की मांग पूरी न करने पर शारीरिक और मानसिक रूप से प्रताड़ित किया गया था । इसलिए वादी ने एक मिथ्या मामला फाइल किया था । वह फिरोज़पुर में अपनी ससुराल में एक कक्ष में रह रही थी । उसने अपने माता-पिता के घर पर अपना उपचार कराया था और उसने जब कभी भी खर्चे की मांग की तो वादी ने उस पर प्रहार किया । उसकी एक पुत्री है जिसका नाम नेहा है और जो उनके विवाह से उत्पन्न हुई थी किन्तु वादी द्वारा कोई भरणपोषण नहीं दिया गया था । इस गांव में अन्य कोई प्रबंध नहीं है । वादी ने उसके मामले में पैरवी करने से भी उसे रोका था । वह अपनी पुत्री के लिए भरणपोषण और उसकी शिक्षा के लिए सहायता चाहती है । वादी के पास दस कक्षों का एक मकान है जो किराए पर उठा हुआ है और उसके पास 6 बीघा भूमि भी है जिससे उसे 45 हजार रुपए की आय प्राप्त होती है । यदि उसका पति उसके साथ सही व्यवहार करे तो वह अपने पति के साथ रहने के लिए तैयार है । वादी-पति ने उसके साथ शारीरिक संबंध बनाए थे । उसने अपनी प्रतिपरीक्षा में अपनी ससुराल से पृथक् रहने के संबंध में इनकार किया है । वर्तमान में वह अपने पति के मकान में बारहाट में रह रही है और उसका पति भी इसी मकान में रह रहा है । पक्षकारों के बीच शारीरिक संबंध बंद नहीं हुए थे । उसने यह स्वीकार किया है कि उसने भारतीय दंड संहिता की धारा 498क के अधीन एक मामला फाइल किया था और उसी समय से उनके संबंध खराब हो गए थे । वर्तमान में उनके संबंध ठीक हैं । वादी सदैव उसे निकट के कक्ष में बंद रखने का प्रयास करता है । डी. डब्ल्यू. 2 मनमोहन जी ने भी 5 लाख रुपए की नकदी की मांग के बारे में अभिसाक्ष्य दिया है और यह अभिसाक्ष्य दिया है कि इसके पश्चात् वादी द्वारा खीझ कर वर्तमान सिविल वाद फाइल किया गया है । उसने यह भी अभिसाक्ष्य दिया है कि वादी ने अपनी पत्नी के उपचार के लिए खर्चे की मांग करने पर इनकार कर दिया । उसने यह भी अभिसाक्ष्य दिया है कि वादी द्वारा अपनी पत्नी को केवल एक कक्ष दिया गया है क्योंकि उसके पास कोई अन्य इंतजाम नहीं है । उसने अपनी पत्नी को बलपूर्वक बराबर के कक्ष में निरुद्ध करते हुए उसे पैरवी करने से रोक

दिया है । प्रतिवादी को अपनी पुत्री की शिक्षा के लिए और भरणपोषण के लिए सहायता की आवश्यकता है । वादी के पास दस कक्षों का एक मकान है और उसके पास 6 बीघा भूमि भी है जिससे उसे 45 हजार रुपए मासिक की आय होती है । यदि वादी प्रतिवादी के साथ सही व्यवहार करे तो प्रतिवादी अपने पति के साथ रहने के लिए तैयार है । वादी का व्यवहार सही नहीं था । उसने इस सुझाव से इनकार किया है कि चूंकि वादी के वर्ष 2009 से प्रतिवादी के साथ शारीरिक संबंध नहीं बने हैं इसलिए प्रतिवादी गर्भवती नहीं हुई है । डी. डब्ल्यू. 3 गगन कुमार ने भी प्रतिवादी की पुत्री के भरणपोषण के लिए और दहेज की मांग के संबंध में प्रतिवादी के पक्षकथन के समर्थन में अभिसाक्ष्य दिया है और उसने यह कहा है कि चूंकि गांव में कोई प्रबंध नहीं है इसलिए प्रतिवादी अपने पति अर्थात् वादी के मकान में एक कक्ष में रहने के लिए मजबूर है । उसका गांव ग्राम रामपुर से 6 किलोमीटर दूर है । फिरोज़पुर और रामपुर के बीच 20-22 किलोमीटर की दूरी है ।

7. विद्वान् कुटुंब न्यायालय ने पक्षकारों के साक्ष्य का विश्लेषण किया । जब मामले को अंतिम रूप से सुना गया तो बार-बार पुकारे जाने पर भी प्रतिवादी की ओर से कोई उपस्थित नहीं हुआ । तथापि, न्यायालय ने अभिलेख पर के साक्ष्य को विचार में लेते हुए यह निष्कर्ष निकाला कि प्रतिवादी वादी के साथ क्रूरता बरतती है क्योंकि उसने पिछले 7 वर्षों से अपने पति के साथ शारीरिक संबंध बनाने से इनकार किया है । साक्षी डी. डब्ल्यू. 2, प्रतिवादी के माता-पिता के ग्राम में रहता है और डी. डब्ल्यू. 3 उसकी बहन का पुत्र (भानजा) है । प्रतिवादी के पक्षकथन के समर्थन के लिए अन्य कोई साक्षी पेश नहीं हुआ है । साक्षी पी. डब्ल्यू. 1, 2 और 5 प्रतिवादी के माता-पिता के ग्राम में रहते हैं और अन्य वादी के गांव के निकट के रहने वाले हैं जिन्होंने वादी के पक्षकथन का समर्थन किया है । तद्नुसार पक्षकारों के बीच विवाह क्रूरता और परित्यजन के आधारों पर विघटित किया गया है ।

8. अपील संस्थित करने के पश्चात् एक अन्य तथ्य भी प्रकाश में आया है कि वादी-पति/हमारे समक्ष के प्रत्यर्थी को भारतीय दंड संहिता की धारा 498क के अधीन अपीलार्थी-पत्नी द्वारा संस्थित मामले में दोषमुक्त कर दिया गया है । न्यायिक मजिस्ट्रेट, प्रथम वर्ग, गोड्डा के विद्वान् न्यायालय द्वारा 2017 के जी. आर. सं. 125-2012/टी. आर. सं. 676 में

तारीख 23 सितंबर, 2017 को पारित दोषमुक्ति के निर्णय को प्रत्यर्थी-पति की ओर से तारीख 27 नवंबर, 2017 के शपथपत्र के साथ अभिलेख पर प्रस्तुत किया गया है । विद्वान् विचारण न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि अभियोजन पक्षकथन अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध सभी युक्तियुक्त संदेहों के परे आरोपों को साबित नहीं कर सका है ।

9. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि अभिलेख पर के तात्विक साक्ष्य से क्रूरता या परित्यजन के संघटक पूरे नहीं हुए हैं । चूंकि प्रतिवादी वादी-पति के साथ उसी मकान में एक कक्ष में रह रही है इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि उसने अपने पति का परित्यजन कर दिया है । अभिलेख पर के साक्ष्य से यह भी उपदर्शित होता है कि विवाह के कुछ समय के पश्चात् उसके साथ दुर्व्यवहार किया गया और तथ्यतः दो जुड़वां बच्चों में से एक की सही रूप से उपचार न करने के कारण मृत्यु हो गई । इन परिस्थितियों में वादी क्रूरता के संघटकों को साबित नहीं कर सका है । अतः विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि आक्षेपित निर्णय अपास्त किए जाने योग्य है इसलिए पक्षकारों के बीच विवाह पुनर्स्थापित किया जाए ।

10. प्रत्यर्थी-पति के विद्वान् काउंसेल ने आक्षेपित निर्णय के समर्थन में दलीलें देते हुए न्यायालय द्वारा क्रूरता और परित्यजन के बारे में निकाले गए निष्कर्षों का समर्थन किया है । उन्होंने यह दलील दी है कि प्रतिवादी द्वारा अपने पति के विरुद्ध दहेज की मांग और वैवाहिक क्रूरता का अभिकथन करते हुए भारतीय दंड संहिता की धारा 498क के अधीन एक मिथ्या मामला संस्थित किया गया था । विद्वान् न्यायिक मजिस्ट्रेट के न्यायालय ने एकमात्र अभियुक्त-पति को आरोपों से दोषमुक्त कर दिया क्योंकि अभियोजन सभी युक्तियुक्त संदेहों के परे अपना पक्षकथन साबित करने में विफल रहा था । इस प्रकार का मिथ्या आरोप स्पष्ट रूप से पत्नी की ओर से क्रूरता के तत्व को साबित करता है । अभिलेख पर के साक्ष्य से यह भी साबित होता है कि वादी को उसकी पत्नी द्वारा सतत रूप से शारीरिक संबंध बनाने से इनकार किया गया था । अतः पक्षकारों के बीच विवाह नाममात्र का था इसलिए पक्षकारों के बीच कोई संवेदनात्मक, शारीरिक और मानसिक लगाव नहीं था । आक्षेपित निर्णय उचित आधारों के साथ दिया गया है और इन परिस्थितियों में उसमें कोई हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं है ।

11. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि विद्वान् कुटुंब न्यायालय ने अपीलार्थी-पत्नी द्वारा संस्थित दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के अधीन कार्यवाही में, जो 2016 के दांडिक प्रकीर्ण मामला सं. 189 के रूप में दर्ज हुआ था, पत्नी और बच्चे के हक में 5 हजार रुपए की भरणपोषण राशि अधिनिर्णीत की है । प्रत्यर्थी नियमित रूप से उक्त धनराशि का संदाय कर रहा है और यह धनराशि न देने की स्थिति में अपीलार्थी तुरन्त दंडात्मक कार्यवाही करने के लिए धमकी देती है ।

12. हमने पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों की दलीलों पर विचार किया और अभिलेख पर के सुसंगत तात्विक साक्ष्य का जिसका पक्षकारों के काउंसेलों द्वारा अवलंब लिया गया है, विश्लेषण किया । हमें प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा अपीलार्थी-पत्नी द्वारा की गई वैवाहिक क्रूरता के अभिवाक् के बारे दी गई दलील में पर्याप्त बल प्रतीत होता है । प्रमथतः कुटुंब न्यायालय ने अभिलेख पर के साक्ष्य के आधार पर पक्षकारों के बीच 7 वर्ष की अवधि से शारीरिक संबंध न होने का निष्कर्ष निकाला है । द्वितीयतः, अपीलार्थी-पत्नी द्वारा वर्ष 2012 में भारतीय दंड संहिता की धारा 498क के अधीन दांडिक मामले को संस्थित करने से यह उपदर्शित होता है कि पक्षकारों के बीच काफी समय से नातेदारी ठीक नहीं है । ऐसी परिस्थितियों में शारीरिक संबंध की बहुत कम ही संभावना होती है जिसके बारे में वादी और उसके साक्षियों द्वारा भी नकारात्मक रूप में बताया गया है । यह बात आश्चर्यजनक है कि भारतीय दंड संहिता की धारा 498क के अधीन एक मामला संस्थित किए जाने के बावजूद हमारे समक्ष की अपीलार्थी/पत्नी ने वादी के उसी मकान के एक कक्ष में रहना पसंद किया । यदि दहेज की अवैध मांग की गई थी और पति द्वारा क्रूरता बरती गई थी तो अपीलार्थी के लिए इस बात की संभावना थी कि वह अपने माता-पिता के साथ रहे । तथापि, अपीलार्थी ने वादी के मकान के एक कक्ष में रहना पसंद किया और उसके बावजूद उसने वादी के विरुद्ध दांडिक कार्यवाही संस्थित की जिसमें अंततः वादी की दोषमुक्ति हुई । अतः यह कहा जा सकता है कि पत्नी द्वारा पति के विरुद्ध मिथ्या आरोप लगाकर दांडिक अभियोजन किया गया था । इन परिस्थितियों में प्रत्यर्थी-पति का पत्नी के विरुद्ध अभिकथित क्रुद्ध हो जाने के व्यवहार का आधार और प्रतिवादी-पत्नी द्वारा पति पर मिथ्या आरोप लगाने का आधार न्यायोचित था । किसी दांडिक मामले में मिथ्या अन्तर्वलन अपने आप में क्रूरता के बराबर है जैसा कि उच्चतम न्यायालय द्वारा **मलाठी रवि, एम. डी.** बनाम

बी. वी रवि, एम. डी.[1] वाले मामले के पैरा 43 और 44 में और **विश्वनाथ सीता राम अग्रवाल** बनाम **साहू सरला विश्वनाथ अग्रवाल**[2] वाले मामले में अभिनिर्धारित किया गया है । जो इस प्रकार है :–

"43. चूंकि हमने घटनाओं पर विचार किया और हमारा यह मत है कि पति के पास यह महसूस करने के लिए कारण है कि उसका अपमान किया गया है क्योंकि उसके विरुद्ध ऐसे आरोप लगाए गए हैं जो सही नहीं हैं ; उसके नातेदारों को वैवाहिक संविवाद में घसीटा गया है और इस बारे में उसके विरुद्ध लिखित कथन में ऐसे प्रकथन किए गए हैं मानो वह मौन रूप से अपने मन में लिंग भाव शून्यता का भाव रखता है अथवा उसमें और उसके माता-पिता में किसी प्रकार का पौरुष दुराग्रह है और उसने अपने पुत्र के नामकरण समारोह में उदासीनता बरती तथा उसे अन्यों से यह पता चला कि उसकी पत्नी उसे अभियोजित करने के लिए गुलबर्गा गई थी । इसके अतिरिक्त दाम्पत्य अधिकारों की पुनर्स्थापना के लिए डिक्री के पश्चात् की संसूचनाओं से पत्नी का ऐसा रुख उपदर्शित होता है मानो वह शतरंज का खेल, खेल रही है । दांडिक अभियोजन संस्थित करने से उसका आचरण साफ दिखाई देता है । विद्वान् मजिस्ट्रेट ने दोषमुक्ति का निर्णय अभिलिखित किया है । पत्नी ने इजाज़त लेने के पश्चात् उच्च न्यायालय के समक्ष एक अपील प्रस्तुत की थी । राज्य सरकार द्वारा सेशन न्यायालय में अपील पेश करने के पश्चात् उसने अपील को वापस लेना पसंद किया । तथापि, वह इस बात के लिए आशयित थी जो कि अभिवचनों से उपदर्शित होता है, कि मामला तर्कसंगत अंतिम निष्कर्ष तक पहुंचे । यह आचरण स्पष्ट रूप से पक्षकारों के बीच वैवाहिक विवाद को उपदर्शित करता है । इससे केवल खटास बढ़ी है । ऐसी परिस्थिति में पति के लिए श्वास लेना मुश्किल है और उनके वैवाहिक जीवन में भिन्नता उसकी जीवन की कहानी को अफसोसनाक बना देती है ।

44. इस प्रकार के रूख और व्यवहार से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि पति के साथ मानसिक क्रूरता बरती गई है और निश्चित रूप से उसकी बदनामी हुई है जबकि वह सरकारी

---

[1] ए. आई. आर. 2014 एस. सी. 2881 = (2014) 7 एस. सी. सी. 640.

[2] ए. आई. आर. 2012 एस. सी. 2586.

आयुर्विज्ञान महाविद्यालय में एक सह-प्राचार्य है । जहां कोई व्यक्ति किसी सरकारी अस्पताल में कार्य करते हुए सामाजिक प्रास्थिति का उपयोग करता है वहां उसके साथ अमानवीयता का व्यवहार उसकी ख्याति को प्रभावित करता है । इसके अतिरिक्त उस स्थिति की सरलतापूर्वक कल्पना की जा सकती है जो वह भोग रहा है । तथ्यतः घटनाओं की शृंखला उसे भावनाओं के सम्पूर्ण स्वरग्राम में जाने के लिए मजबूर करती है । यह बात निश्चित रूप से उसके स्वाभिमान को और मानव संवेदना को आघात पहुंचाती है । विवाह की आशावादी संकल्पना संभावित रूप से दृष्टांत्मक बन गई है और यह कहना गलत नहीं होगा कि पत्नी ने पति के प्रति गलत भावनात्मक प्रवृत्ति उपदर्शित की है । अतः उच्च न्यायालय द्वारा मंजूर की गई विवाह-विच्छेद की डिक्री केवल मानसिक क्रूरता के आधार पर ही पुष्ट किए जाने योग्य है ।"

13. मामले की सम्पूर्ण परिस्थितियों और इस तथ्य को दृष्टिगत करते हुए कि आक्षेपित निर्णय पारित किए जाने तक पिछले 7 वर्षों की अवधि से पक्षकारों के बीच कोई शारीरिक संबंध नहीं बने हैं और इस बात को दृष्टिगत करते हुए कि प्रत्यर्थी की भारतीय दंड संहिता की धारा 498क के अधीन अपीलार्थी-पत्नी द्वारा संस्थित एक मिथ्या दांडिक मामले में दोषमुक्ति हुई है, जहां पक्षकारों के बीच उनकी नातेदारी नाममात्र की रह गई है, विवाह को बहाल करना निरर्थक प्रयोग होगा । उपर्युक्त की गई चर्चा को दृष्टिगत करते हुए और ऊपर अभिलिखित कारणों को दृष्टिगत करते हुए हमें विद्वान् कुटुंब न्यायालय के निर्णय में हस्तक्षेप करने के लिए कोई कारण और प्रयोजन प्रतीत नहीं होता । तद्नुसार अपील खारिज की जाती है ।

14. अपीलार्थी इस बात के लिए स्वतंत्र है कि वह स्थायी भरणपोषण के लिए हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 24 के निबंधनों में संबंधित कुटुंब न्यायालय में समावेदन कर सकती है ।

अपील खारिज की गई ।

मह.

सीमाशुल्क आयुक्त

बनाम

आरिफ खिंची

तारीख 23 मई, 2018

न्यायमूर्ति संजीव खन्ना और न्यायमूर्ति श्री चन्द्रशेखर

सीमाशुल्क अधिनियम, 1962 (1962 का 52) – धारा 2(34) और 28(11) – राजस्व अन्वेषण निदेशालय द्वारा कारण बताओ नोटिस जारी किए जाने की अधिकारिता का प्रयोग किया जाना – राजस्व अन्वेषण निदेशालय कारण बताओ नोटिस जारी करने के प्रयोजनार्थ समुचित प्राधिकारी है या नहीं – केन्द्रीय उत्पादशुल्क और सीमाशुल्क बोर्ड द्वारा अधिसूचना जारी किया जाना जिसके द्वारा राजस्व अन्वेषण निदेशालय के अपर महानिदेशक को सम्मिलित करते हुए विभिन्न प्राधिकारियों को कार्य समनुदेशित किया जाना – राजस्व अन्वेषण निदेशालय के प्राधिकारी अधिसूचना जारी किए जाने की तारीख से कारण बताओ नोटिस जारी करने के लिए सशक्त हैं ।

संक्षेप में मामले के तथ्य यह हैं कि प्रत्यर्थियों को राजस्व अन्वेषण निदेशालय के अपर महानिदेशक द्वारा जारी कारण बताओ नोटिस और उसके आधार पर पारित मूल न्यायनिर्णायक आदेश नई दिल्ली के तुगलकाबाद स्थित इनलैण्ड कंटेनर डिपो के प्रमुख सीमाशुल्क आयुक्त (आयात) के कार्यालय द्वारा जारी किए गए । इन मूल न्यायनिर्णायक आदेशों को चुनौती दी गई और उनको सीमाशुल्क, उत्पाद और सेवाकर अधिकरण द्वारा दोआबा स्टड एण्ड एग्रीकल्चर फार्म बनाम सीमाशुल्क आयुक्त (आई. एण्ड जी.) वाले मामले में तारीख 12 जून, 2017 को पारित अंतिम आदेश संख्या 53941-53942/2017 को दृष्टि में रखते हुए अपास्त कर दिया गया । दोआबा स्टड एण्ड एग्रीकल्चर फार्म वाले मामले को प्रतिप्रेषण के माध्यम से मंजूर करते हुए यह अभिनिर्धारित किया गया था कि आक्षेपित आदेश को अपास्त किया जाता है और मामले को मूल न्यायनिर्णायक प्राधिकारी को इस आदेश के साथ प्रतिप्रेषित किया जाता है वे मंगली इम्पेक्स लिमिटेड बनाम भारत संघ वाले मामले में माननीय

उच्चतम द्वारा दिए जाने वाले विनिश्चय के उपलब्ध होने के पश्चात् मामले में अधिकारिता के विवाद्यक को निर्णीत करेंगे और तत्पश्चात् निर्धारिती को सुने जाने का अवसर प्रदान करने के पश्चात् मामले का निर्णय गुणागुण पर करेंगे । मामले को प्रतिप्रेषित करते हुए, अपील को मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – पूर्वोक्त स्थिति को ध्यान में रखते हुए यह प्रश्न कि क्या राजस्व अन्वेषण निदेशालय के अधिकारी कारण बताओ नोटिस जारी कर सकते थे या नहीं और अंतिम आदेश पर उसका क्या प्रभाव होगा, एक ऐसा विवाद्यक है जिसका परीक्षण और जिस पर विचारण अधिकरण द्वारा किया जाना है । अधिकरण ने उपरोक्त विवाद्यक को गुणागुण पर निर्णीत करने के बजाय मूल आदेश को अपास्त करने वाला आदेश पारित कर दिया है ताकि मंगली इम्पेक्स वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के समक्ष लम्बित अपील में विनिश्चय की प्रतीक्षा की जा सके । अन्य शब्दों में विधिक स्थिति के न्यायनिर्णयन और विनिश्चय के बिना मूल मामले में पारित आदेशों को अभिखंडित और अपास्त कर दिया गया है और उसको मूल मामले में नया आदेश पारित करने के लिए प्राधिकारियों के पास भेज दिया गया है । न्यायालय यह नहीं समझते कि उक्त प्रक्रिया सही और उचित है । अधिकरण को विवाद्यक को गुणागुण पर निर्णीत करना चाहिए । यदि मूल कार्यवाहियों में कोई आदेश एक बार अपास्त हो जाता है, तो इसका अर्थ यह होगा कि सम्पूर्ण न्यायनिर्णयन कार्यवाही फिर से चलेगी । यह सत्य होगा यदि मंगली इम्पेक्स वाले मामले में दिए गए निर्णय का विनिश्चयानुपात स्वीकार नहीं किया जाता है । न्यायालय यह समझता है कि इससे निर्धारिती का उत्पीड़न होगा और साथ ही विभाग को भी असुविधा होगी । उपरोक्त परिस्थितियों में न्यायालय द्वारा अनेक आदेश पारित किए हैं जिनमें विपुल ओवरसीज प्राइवेट लिमिटेड बनाम सीमाशुल्क आयुक्त और अन्य वाला मामला भी सम्मिलित है, जिनमें पक्षों की सहमति के साथ अपीलों को मंजूर करते हुए और मामले में पुनः विनिश्चय पारित करने के लिए अधिकरण को प्रतिप्रेषित करते हुए और यह विकल्प देते हुए कि वे राजस्व अन्वेषण निदेशालय के अधिकारियों की दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा मंगली इम्पेक्स वाले मामले में दिए गए विनिश्चय से प्रभावित हुए बिना अधिकारिता के प्रश्न को सम्मिलित करते हुए विवाद्यक को गुणागुण को निर्णीत करें या उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्णय पारित किए जाने की प्रतीक्षा करें । इस प्रक्रम पर, जब न्यायालय आदेश का श्रुतलेख दे

रहे थे, अधिवक्ता श्री कुणाल प्रकाश प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थित हुए और न्यायालय यह निदेशित करता है उनकी उपस्थिति को उल्लिखित किया जाए । उन्होंने न्यायालय के समक्ष गुणागुण पर कोई बहस नहीं की । विधि के प्रश्न का तद्नुसार उत्तर राजस्व अन्वेषण निदेशालय के पक्ष में और निर्धारिती के विरुद्ध दिया जाता है और साथ ही मामले को अधिकरण को प्रतिप्रेषित किया जाता है । न्यायालय यह स्पष्ट करता है कि न्यायालय ने गुणागुण पर कोई टिप्पणी नहीं की है । (पैरा 7, 8, 9 और 10)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2016]	2016 (335) ई. एल. टी. 605 (दिल्ली) : **मंगली इम्पेक्स लिमिटेड** बनाम **भारत संघ ;**	4
[2015]	2015 (315) ई. एल. टी. 167 (बम्बई) : **सुनील गुप्ता** बनाम **भारत संघ ;**	6
[2011]	2011 (265) ई. एल. टी. 19 (एस. सी.) : **सीमाशुल्क आयुक्त** बनाम **सय्यद अली** ।	4

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2018 की सीमाशुल्क अपील सं. 16 (साथ में 2018 की सीमाशुल्क अपील संख्या 17, 18 और 19).

सीमा शुल्क और सेवा कर अधिकरण द्वारा तारीख 12 जून, 2017 को पारित आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री हरप्रीत सिंह

प्रत्यर्थी की ओर से श्री कुणाल प्रकाश

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति संजीव खन्ना ने दिया ।

न्या. खन्ना – द्वितीय बार मामले के पुकार कराए जाने के बावजूद प्रत्यर्थियों की ओर से कोई उपस्थित नहीं हुआ ।

2. तारीख 16 अप्रैल, 2018 के आदेश द्वारा विधि का निम्नलिखित सारभूत प्रश्न विरचित किया गया था :–

"क्या सीमाशुल्क, उत्पादशुल्क और सेवाकर अपीली अधिकरण

ने मंगली इम्पेक्स लिमिटेड **बनाम** भारत संघ [2016 (335) ई. एल. टी. 605 (दिल्ली)] वाले मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय के विनिश्चय के विरुद्ध फाइल की गई सिविल अपील में उच्चतम न्यायालय द्वारा पारित किए गए विनिश्चय के पश्चात् अधिकारिता के विवाद्यक को पहले निर्णीत किए जाने के प्रयोजनार्थ मूल न्यायनिर्णायक प्राधिकारी को प्रतिप्रेषित करने के लिए पारित किए गए आदेश को पारित करके विधि की दृष्टि में न्यायोचित और सही कार्य किया ?"

3. हम अन्तर्वलित सीमित विवाद को दृष्टि में रखते हुए तथ्यों और विवाद्यकों की विस्तारपूर्वक चर्चा करना नहीं चाहते । हम केवल उन्हीं तथ्यों के बारे में चर्चा करेंगे जो विधि की दृष्टि में ऊपर वर्णित समान प्रश्नों को निर्णीत करने के लिए आवश्यक है । निर्विवाद स्थिति यह है कि प्रत्यर्थियों को राजस्व अन्वेषण निदेशालय के अपर महानिदेशक द्वारा जारी कारण बताओ नोटिस और उसके आधार पर पारित मूल न्यायनिर्णायक आदेश नई दिल्ली के तुगलकाबाद स्थित इनलैण्ड कंटेनर डिपो के प्रमुख सीमाशुल्क आयुक्त (आयात) के कार्यालय द्वारा जारी किए गए थे । इन मूल न्यायनिर्णायक आदेशों को चुनौती दी गई जिनको सीमाशुल्क, उत्पादशुल्क और सेवाकर अपीली अधिकरण (संक्षेप में 'अधिकरण') द्वारा उनके द्वारा **दोआबा स्टड एण्ड एग्रीकल्चर फार्म** बनाम **सीमाशुल्क आयुक्त** वाले मामले में तारीख 12 जून, 2017 को पारित अंतिम आदेश संख्या 53941-53942/2017 को दृष्टि में रखते हुए अपास्त कर दिया गया । **दोआबा स्टड एण्ड एग्रीकल्चर फार्म** (उपरोक्त) वाले मामले में पारित अधिकरण का विनिश्चय इस प्रकार है :–

> "2. अपीलार्थी के काउंसेल ने दलीलों के दौरान एक प्रारम्भिक अभिवाक् किया है कि हमारे समक्ष उपस्थित मामले में राजस्व अन्वेषण निदेशालय द्वारा कारण बताओ नोटिस जारी किया गया था । माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय ने मंगली इम्पेक्स लिमिटेड **बनाम** भारत संघ वाले मामले में तारीख 3 मई, 2016 को यह मताभिव्यक्ति की है कि राजस्व अन्वेषण निदेशालय कारण बताओ नोटिस जारी करने के लिए सक्षम नहीं हैं, इसलिए, वर्तमान कार्यवाहियों, जिनमें राजस्व अन्वेषण निदेशालय को नोटिस जारी किया गया है, को अपास्त किए जाने का अनुरोध किया गया है ।

3. इसके विपरीत, विभाग के विद्वान् काउंसेल ने राजस्व अन्वेषण निदेशालय द्वारा जारी नोटिस को न्यायानुमत ठहराया और मामले को गुणागुण के आधार पर निर्णीत किए जाने का अनुरोध किया ।

4. हमने दोनों पक्षों को विस्तारपूर्वक सुना और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का परिशीलन किया ।

5. अभिलेख के आधार पर यह प्रतीक होता है कि वर्तमान अपील में उद्‌भूत आरम्भिक विवाद्यक सीमाशुल्क अधिनियम के अधीन कारण बताओ नोटिस जारी किए जाने के प्रयोजनार्थ राजस्व अन्वेषण निदेशालय के अधिकारियों की अधिकारिती के संबंध है । निर्धारिती-अपीलार्थी ने सीमाशुल्क आयुक्त **बनाम** सय्यद अली [2011 (265) ई. एल. टी. 19 (एस. सी.)] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए विनिश्चय के अनुसार राजस्व अन्वेषण निदेशालय के अधिकारी 1962 के सीमाशुल्क अधिनियम की धारा 2(34) के निबंधनों के अनुसार समुचित अधिकारी नहीं हैं ।

6. यह भी देखा गया है कि माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा विधि की घोषणा के पश्चात् 1962 के सीमाशुल्क अधिनियम की धारा 28 के उपबंधों को तारीख 8 अप्रैल, 2011 से 2011 के वित्त अधिनियम द्वारा संशोधित कर दिया गया है ।

7. यह भी देखा गया कि **सय्यद अली** (उपरोक्त) वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय द्वारा सृजित स्थिति पर नियंत्रण किए जाने के प्रयोजनार्थ केन्द्रीय उत्पादशुल्क और सीमाशुल्क बोर्ड द्वारा तारीख 6 जुलाई, 2011 की अधिसूचना संख्या 44/2011-सीमाशुल्क (एन. टी.) जारी की गई जिसके द्वारा समुचित अधिकारी के कार्यों को विभिन्न अन्य अधिकारियों (राजस्व अन्वेषण निदेशालय के अपर निदेशक को सम्मिलित करते हुए) को समनुदेशित कर दिया गया जिसका उल्लेख अधिनियम की धारा 28 के प्रयोजनार्थ जारी की गई अधिसूचना में किया गया । अतः, तारीख 6 जुलाई, 2011 से राजस्व अन्वेषण निदेशालय के अपर महानिदेशक को तत्काल प्रभाव से सीमाशुल्क अधिनियम की धारा 28 के प्रयोजनों के लिए 'समुचित अधिकारी' के रूप में नियुक्त कर दिया गया ।

इसलिए, तारीख 6 जुलाई, 2011 से राजस्व अन्वेषण निदेशालय के अपर महानिदेशक को धारा 28 के अधीन मांग का नोटिस जारी किए जाने के प्रयोजनार्थ सशक्त कर दिया गया है ।

8. तत्पश्चात, 2011 के सीमाशुल्क (संशोधन और विधिमान्यकरण) अधिनियम की धारा 28 के अधीन उपधारा (11) को तारीख 14 सितम्बर, 2014 से अन्तःस्थापित किया गया जिसके द्वारा राजस्व अन्वेषण निदेशालय के विभिन्न अधिकारियों को समुचित अधिकारियों के क्रियाकलाप भूतलक्षी प्रभाव के साथ समनुदेशित कर दिए गए ।

9. तत्पश्चात्, अर्थात् संशोधन की पश्चात्वर्ती अवधि के लिए मामला अर्थात् कारण बताओ सूचना जारी करने या जारी न करने के लिए समुचित अधिकारिताप्राप्त राजस्व अन्वेषण निदेशालय के अधिकारियों ने मंगली इम्पेक्स लिमिटेड **बनाम** भारत संघ [2016 (335) ई. एल. टी. 605 (दिल्ली)] वाले मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय की शरण ली और दिल्ली उच्च न्यायालय ने अन्य बातों के साथ अभिनिर्धारित किया कि नई अंतःस्थापित धारा 28(11) राजस्व अन्वेषण निदेशालय या सीमाशुल्क और उत्पादशुल्क महानिदेशालय के अधिकारियों को तारीख 8 अप्रैल, 2011 से पूर्ववर्ती अवधि के लिए सशक्त नहीं करती । अतः यह देखा गया है कि माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय का उक्त आदेश निर्धारिती के पक्ष में और राजस्व अन्वेषण निदेशालय के विरुद्ध है ।

10. तथापि, आगे यह उल्लेख किया गया है कि उक्त विवाद्यक माननीय बम्बई उच्च न्यायालय के समक्ष लम्बित सुनील गुप्ता **बनाम** भारत संघ [2015(315) ई. एल. टी. 167 (बोम्बे)] वाले मामले और साथ ही वुप्पलम्रिथा मेगनेटिक कम्पोनेट लिमिटेड **बनाम** राजस्व अन्वेषण निदेशालय (क्षेत्रीय यूनिट), चैन्नई [2017 (345) ई. एल. टी. 161 (ए. पी.)] वाले मामले में तेलंगाना और आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालयों के समक्ष लम्बित विषयवस्तु है ।

11. विभिन्न उच्च न्यायालयों (उपरोक्त) द्वारा परस्पर विरोधी विनिश्चय पारित किए जाने के कारण अंततः मामला माननीय उच्चतम न्यायालय के समक्ष पहुंचा जिसने तारीख 7 अक्तूबर, 2016 के आदेश द्वारा दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय के क्रियान्वयन को स्थगित कर दिया ।

12. यहां पर यह उल्लेख किया जाता है कि वर्तमान में माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय ने 2017 की रिट याचिका संख्या सी./4438 और 2017 के सिविल प्रकीर्ण आवेदन संख्या 19387 के माध्यम से फाइल किए गए बी. एस. एन. एल. **बनाम** भारत संघ वाले मामले में इसी प्रकार के विवाद्यक पर विचार किया जिसमें भी राजस्व अन्वेषण निदेशालय द्वारा नोटिस जारी किया गया था । माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय ने मंगली इम्पेक्स लिमिटेड **बनाम** भारत संघ वाले मामले, जिसको माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा स्थगित कर दिया गया है, पर विचार किया गया है । अंततः, माननीय उच्च न्यायालय ने यह मताभिव्यक्ति करते हुए याची को स्वतंत्रता प्रदान की कि याची को मंगली इम्पेक्स लिमिटेड **बनाम** भारत संघ वाले मामले में न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में भारत संघ द्वारा फाइल की गई अपीलों के निर्णय पर निर्भर रहते हुए चुनौती का पुनर्विलोकन करने की अनुज्ञा प्रदान की जाती है ।

13. हम **बी. एस. एन. एल.** (उपरोक्त) वाले मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा अधिकथित विनिश्चयानुपात का पालन करते हुए और साथ ही मामले के सम्पूर्ण तथ्यों और परिस्थितियों पर समग्रता में विचार करते हुए आक्षेपित आदेश को अपास्त करते हैं और मामले को मूल न्यायनिर्णायक प्राधिकारी को इस आदेश के साथ प्रतिप्रेषित करते हैं कि वे मंगली इम्पेक्स लिमिटेड **बनाम** भारत संघ (उपरोक्त) वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए जाने वाले विनिश्चय के उपलब्ध होने के पश्चात् सर्वप्रथम अधिकारिता के विवाद्यक को निर्णीत करें और तत्पश्चात् निर्धारिती को सुने जाने का अवसर प्रदान करने के पश्चात् गुणागुण पर मामले को निर्णीत करें । जब तक अंतिम विनिश्चय पारित नहीं कर दिया जाता, यथास्थिति बनी रहेगी ।

14. परिणामस्वरूप, निर्धारिती द्वारा फाइल की गई अपीलें प्रतिप्रेषण के माध्यम से मंजूर की जाती हैं ।"

4. हम विवाद का मूल्यांकन किए जाने के प्रयोजनार्थ यह उल्लेख करते हैं दिल्ली उच्च न्यायालय ने **मंगली इम्पेक्स लिमिटेड** बनाम **भारत संघ**[1] वाले मामले में अभिनिर्धारित किया है कि राजस्व अन्वेषण निदेशालय

---

[1] 2016 (335) ई. एल. टी. 605 (दिल्ली).

कारण बताओ नोटिस जारी करने के लिए सक्षम नहीं था और इसलिए, मूल रूप से पारित किया गया आदेश अकृत और अवैध है । **सीमाशुल्क आयुक्त** बनाम **सय्यद अली**[1] वाले मामले, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया कि राजस्व अन्वेषण निदेशालय 1962 के सीमाशुल्क अधिनियम की धारा 2(34) के अधीन समुचित अधिकारी नहीं हैं, में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए विनिश्चय के पश्चात् की अवधि के विधायी संशोधनों को निर्दिष्ट किया गया । **सय्यद अली शाह** वाले मामले में दिए गए विनिश्चय के पूर्व केन्द्रीय उत्पाद और सीमाशुल्क बोर्ड द्वारा तारीख 6 जुलाई, 2011 की अधिसूचना संख्या 44/2011-सीमाशुल्क (एन. टी.) जारी की गई जिसके द्वारा सीमाशुल्क अधिनियम की धारा 28 के प्रयोजनार्थ राजस्व अन्वेषण निदेशालय के अपर महानिदेशक को सम्मिलित करते हुए विभिन्न अधिकारियों को कार्य समनुदेशित कर दिए गए । अपीलार्थी का पक्षकथन यह है कि इसीलिए राजस्व अन्वेषण निदेशालय के अधिकारी तारीख 6 जुलाई, 2011 से सीमाशुल्क अधिनियम की धारा 28 के अधीन नोटिस जारी करने के प्रयोजनार्थ सशक्त थे । तत्पश्चात्, सीमाशुल्क अधिनियम की धारा 28 के अधीन उपधारा (11) को 2011 के सीमाशुल्क (संशोधन और विधिमान्यकरण) अधिनियम द्वारा तारीख 16 सितम्बर, 2011 से अंतःस्थापित किया गया और भूतलक्षी प्रभाव के साथ राजस्व अन्वेषण निदेशालय के समुचित अधिकारियों को कार्य समनुदेशित कर दिए गए । **मंगली इम्पेक्स लिमिटेड** (उपरोक्त) वाले मामले में इस उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने अभिनिर्धारित किया है कि सीमाशुल्क अधिनियम की धारा 28 में नवीनतम रूप से अंतःस्थापित उपधारा (11) राजस्व अन्वेषण निदेशालय या सीमाशुल्क और उत्पादशुल्क महानिदेशालय के अधिकारियों को तारीख 8 अप्रैल, 2011 के पूर्व की अवधि के लिए कारण बताओ नोटिस जारी करने के लिए सशक्त नहीं करती अर्थात् वह अवधि जिसके पूर्व 2011 के वित्त अधिनियम को राष्ट्रपति द्वारा सहमति प्राप्त हो गई थी ।

5. तथापि, हम यह उल्लेख करते हैं कि **मंगली इम्पेक्स** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए निर्णय और उस निर्णय के विनिश्चयानुपात को माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा तारीख 7 अक्तूबर, 2016 के आदेश द्वारा स्थगित कर दिया गया है [जैसा कि **मंगली इम्पेक्स लिमिटेड** बनाम **भारत**

---

[1] 2011 (265) ई. एल. टी. 19 (एस. सी.).

संघ (उपरोक्त) वाले मामले में सूचित किया गया है ।]

6. बम्बई उच्च न्यायालय ने **सुनील गुप्ता** बनाम **भारत संघ**[1] वाले मामले और तेलंगाना और आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालयों द्वारा **वुप्पलम्रिथा मेगनेटिक कम्पोनेट लिमिटेड** बनाम **राजस्व अन्वेषण निदेशालय (क्षेत्रीय यूनिट), चैन्नई** (उपरोक्त) वाले मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा **मंगली इम्पेक्स** (उपरोक्त) वाले मामले में व्यक्त किए गए मत के विपरीत मत व्यक्त किया है ।

7. पूर्वोक्त स्थिति को ध्यान में रखते हुए यह प्रश्न कि क्या राजस्व अन्वेषण निदेशालय के अधिकारी कारण बताओ नोटिस जारी कर सकते थे या नहीं और अंतिम आदेश पर उसका क्या प्रभाव होगा, एक ऐसा विवाद्यक है जिसका परीक्षण और जिस पर विचारण अधिकरण द्वारा किया जाना है । अधिकरण ने उपरोक्त विवाद्यक को गुणागुण पर निर्णीत करने के बजाय मूल आदेश को अपास्त करने वाला आदेश पारित कर दिया है ताकि **मंगली इम्पेक्स** (उपरोक्त) वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के समक्ष लम्बित अपील में विनिश्चय की प्रतीक्षा की जा सके । अन्य शब्दों में विधिक स्थिति के न्यायनिर्णयन और विनिश्चय के बिना मूल मामले में पारित आदेशों को अभिखंडित और अपास्त कर दिया गया है और उसको मूल मामले में नया आदेश पारित करने के लिए प्राधिकारियों के पास भेज दिया गया है । हम नहीं समझते कि उक्त प्रक्रिया सही और उचित है । अधिकरण को विवाद्यक को गुणागुण पर निर्णीत करना चाहिए । यदि मूल कार्यवाहियों में कोई आदेश एक बार अपास्त हो जाता है, तो इसका अर्थ यह होगा कि सम्पूर्ण न्यायनिर्णयन कार्यवाही फिर से चलेगी । यह सत्य होगा यदि **मंगली इम्पेक्स** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए निर्णय का विनिश्चयानुपात स्वीकार नहीं किया जाता है । हम समझते हैं कि इससे निर्धारिती का उत्पीड़न होगा और साथ ही विभाग को भी असुविधा होगी ।

8. उपरोक्त परिस्थितियों में हमने अनेक आदेश पारित किए है जिनमें **विपुल ओवरसीज प्राइवेट लिमिटेड** बनाम **सीमाशुल्क आयुक्त और अन्य** वाला मामला भी सम्मिलित है, जिनमें पक्षों की सहमति के साथ अपीलों को मंजूर करते हुए और मामले में पुनः विनिश्चय पारित करने के लिए अधिकरण को प्रतिप्रेषित करते हुए और यह विकल्प देते हुए कि वे राजस्व

[1] 2015 (315) ई. एल. टी. 167 (बम्बई).

अन्वेषण निदेशालय के अधिकारियों की दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा **मंगली इम्पेक्स** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए विनिश्चय से प्रभावित हुए बिना अधिकारिता के प्रश्न को सम्मिलित करते हुए विवाद्यक को गुणागुण के आधार पर निर्णीत करें या उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्णय पारित किए जाने की प्रतीक्षा करें ।

9. इस प्रक्रम पर, जब हम आदेश का श्रुतलेख दे रहे थे, अधिवक्ता श्री कुणाल प्रकाश प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थित हुए और हम निदेशित करते हैं उनकी उपस्थिति को उल्लिखित किया जाए । उन्होंने हमारे समक्ष गुणागुण पर कोई बहस नहीं की ।

10. विधि के प्रश्न का तद्नुसार उत्तर राजस्व अन्वेषण निदेशालय के पक्ष में और निर्धारिती के विरुद्ध दिया जाता है और साथ ही मामले को अधिकरण को प्रतिप्रेषित किया जाता है । हम स्पष्ट करते हैं कि हमने गुणागुण पर कोई टिप्पणी नहीं की है ।

11. विलम्ब से बचने के लिए पक्षों को निदेशित किया जाता है कि वे अधिकरण के समक्ष तारीख 23 जुलाई, 2018 को उपस्थित हों ।

12. लागत के बाबत कोई आदेश पारित नहीं किया जा रहा ।

अपील मंजूर की गई ।

अवि.

स्टेट ट्रेडिंग कार्पोरेशन लि. (मैसर्स)

बनाम

सीमाशुल्क आयुक्त

तारीख 30 अक्तूबर, 2017

न्यायमूर्ति टी. एस. सिवाग्नानम्

सीमाशुल्क अधिनियम, 1962 (1962 का 52) – धारा 129क [सपठित समय-सीमा अधिनियम, 1963 की धारा 5] – उच्च न्यायालय द्वारा सीमाशुल्क, उत्पादशुल्क और सेवाकर अपीली अधिकरण के समक्ष समय-सीमा द्वारा बाधित अपील फाइल किया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करते हुए आक्षेपित आदेश की नकल की प्राप्ति के तीस दिनों के भीतर अधिकरण के समक्ष अपील फाइल करने की अनुज्ञा दिया जाना – उच्च न्यायालय अधिकरण के समक्ष अपील फाइल करने की अनुज्ञा प्रदान कर सकता है और यदि उच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित समयावधि के भीतर अपील फाइल कर दी जाती है तो अपील को समय-सीमा द्वारा बाधित नहीं माना जाएगा ।

याची के विद्वान् काउंसेल ने निवेदन किया कि आक्षेपित आदेश तारीख 18 अप्रैल, 2017 को पारित किया गया था और यदि वर्तमान में कोई अपील फाइल की जाती है, तो वह समयावधि द्वारा बाधित होगी । इस तथ्य पर विचार करते हुए कि याची भारत सरकार का एक निगम है और द्वितीय प्रत्यर्थी को दिवालिया घोषित किया जा चुका है, उच्च न्यायालय ने अपने विवेकाधिकार का प्रयोग किया और समय प्रदान किया, जिसके भीतर याची को सीमाशुल्क, उत्पादशुल्क और सेवाकर अपीली अधिकरण के समक्ष अपील फाइल करने की अनुज्ञा प्रदान कर दी । तद्नुसार, रिट याचिका पर विचार करने से इनकार करते हुए याची को सीमाशुल्क, उत्पादशुल्क और सेवाकर अपीली अधिकरण के समक्ष अपील फाइल करने का स्वातंत्र्य प्रदान और रिट याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – याची के विद्वान् काउंसेल ने निवेदन किया कि आक्षेपित आदेश तारीख 18 अप्रैल, 2017 को पारित किया गया था और यदि वर्तमान में कोई अपील फाइल की जाती है, तो वह समयावधि द्वारा बाधित होगी । इस तथ्य पर विचार करते हुए कि याची भारत सरकार का एक

निगम है और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए भी कि द्वितीय प्रत्यर्थी को दिवालिया घोषित किया जा चुका है, यह न्यायालय इस मामले में अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करना और समय प्रदान करना, जिसके भीतर याची सीमाशुल्क, उत्पादशुल्क और सेवाकर अपीली अधिकरण के समक्ष अपील फाइल कर सकता है, उचित समझता है । तद्नुसार, न्यायालय ने रिट याचिका पर विचार करने से इनकार करते हुए याची को सीमाशुल्क, उत्पादशुल्क और सेवाकर अपीली अधिकरण के समक्ष अपील फाइल करने का स्वातंत्र्य प्रदान करते हैं और यदि इस आदेश की नकल की प्राप्ति की तारीख से तीस दिनों की अवधि के भीतर कोई अपील फाइल की जाती है, तो अधिकरण को निदेशित किया जाता है कि वह समय सीमा को ध्यान में रखे बिना उस अपील पर विचार करेगा । तद्नुसार, इस रिट याचिका को निष्तारित किया जाता है । लागत के संबंध में कोई आदेश पारित नहीं किया जाता । परिणामस्वरूप, संबद्ध प्रकीर्ण याचिकाएं बन्द की जाती हैं । (पैरा 5 और 6)

रिट अधिकारिता : **2017 की रिट याचिका संख्या 19308 (साथ में 2017 की प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या 20811 और 29609)**.

सीमाशुल्क आयुक्त द्वारा तारीख 18 अप्रैल, 2017 को पारित आदेश के विरुद्ध रिट याचिका ।

याची की ओर से श्री वी. भीमन (मैसर्स सम्पथ कुमार एण्ड एसोसिएट्स की ओर से)

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री वी. सुदरेशरन् (वरिष्ठ अपर स्थायी काउंसिल)

आदेश

याची की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल श्री वी. भीमन, जो मैसर्स सम्पथ कुमार एण्ड एसोसिएट्स की ओर से उपस्थित हैं और प्रथम प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थित विद्वान् वरिष्ठ स्थायी काउंसेल श्री सुदरेशरन् को सुना । दोनों पक्षों की सहमति से याचिका पर अंतिम निष्तारण के प्रयोजनार्थ विचार किया गया ।

2. पूर्ववर्ती सुनवाई के दौरान इस न्यायालय को सूचित किया गया था कि द्वितीय प्रत्यर्थी को दिवालिया घोषित किया जा चुका है और वर्तमान

में उसकी संपदा को शासकीय अधिन्यासी में निहित किया जा चुका है ।

3. याची के विद्वान् काउंसेल ने निवेदन किया कि याची नहरों के विनिर्माण का एक अभिकर्ता है और उसको तारीख 18 अप्रैल, 2017 को पारित आक्षेपित आदेश में चाही गई रकम का संदाय करने के लिए दायी नहीं ठहराया जा सकता ।

4. यह न्यायालय दोनों पक्षों के विद्वान् अधिवक्ताओं को पर्याप्त समय तक सुने जाने के पश्चात् आक्षेपित आदेश की परिशुद्धता को न्यायनिर्णीत करने का कोई कारण नहीं पाती । इस न्यायालय के लिए यह उचित नहीं होगा कि तथ्य के विवादित प्रश्नों, जिनको निश्चित रूप से रिट याचिका में न तो निर्णीत किया जा सकता और न ही किया जाना चाहिए, पर विचार करे, विशेष रूप से जब याची को सीमाशुल्क अधिनियम के उपबंधों के अधीन पर्याप्त रूप से प्रभावी अनुकल्पिक अनुतोष उपलब्ध हैं । सीमाशुल्क अधिनियम की धारा 129क(1) के निबंधनों के अनुसार याची को सीमाशुल्क, उत्पादशुल्क और सेवाकर अपीली अधिकरण के समक्ष अपील फाइल करके अनुतोष प्राप्त हो सकता है । इसलिए, याची के लिए यह आवश्यक है कि वह वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से इस न्यायालय की शरण में आने के बजाय उक्त अनुतोष को प्राप्त करे ।

5. याची के विद्वान् काउंसेल ने निवेदन किया कि आक्षेपित आदेश तारीख 18 अप्रैल, 2017 को पारित किया गया था और यदि वर्तमान में कोई अपील फाइल की जाती है, तो वह समयावधि द्वारा बाधित होगी । इस तथ्य पर विचार करते हुए कि याची भारत सरकार का एक निगम है और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए भी कि द्वितीय प्रत्यर्थी को दिवालिया घोषित किया जा चुका है, यह न्यायालय इस मामले में अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करना और समय प्रदान करना, जिसके भीतर याची सीमाशुल्क, उत्पादशुल्क और सेवाकर अपीली अधिकरण के समक्ष अपील फाइल कर सकता है, उचित समझता है । तद्नुसार, हम रिट याचिका पर विचार करने से इनकार करते हुए याची को सीमाशुल्क, उत्पादशुल्क और सेवाकर अपीली अधिकरण के समक्ष अपील फाइल करने का स्वातंत्र्य प्रदान करते हैं और यदि इस आदेश की नकल की प्राप्ति की तारीख से तीस दिनों की अवधि के भीतर कोई अपील फाइल की जाती है, तो अधिकरण को निदेशित किया जाता है कि वह समय सीमा को ध्यान में रखे बिना उस अपील पर विचार करेगा ।

6. तद्नुसार, इस रिट याचिका को निष्तारित किया जाता है । लागत के संबंध में कोई आदेश पारित नहीं किया जाता । परिणामस्वरूप, संबद्ध प्रकीर्ण याचिकाएं बन्द की जाती हैं ।

7. तारीख 3 नवम्बर, 2017 के आदेश की प्रति जारी की जाए ।

8. रजिस्ट्री को निदेशित किया जाता है कि मूल आक्षेपित आदेश को निचले न्यायालय को वापस भेज दिया जाए ।

रिट याचिका खारिज की गई ।

अवि.

(2018) 2 सि. नि. प. 672 **राजस्थान**

नेहा रवाड़िया (श्रीमती)

बनाम

अवधेश कुमार

तारीख 15 फरवरी, 2018

न्यायमूर्ति अजय रस्तोगी और न्यायमूर्ति दिनेश चन्द्र सोमानी

कुटुंब न्यायालय अधिनियम, 1984 (1984 का 66) – धारा 19 [सपठित सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 9, नियम 13 और धारा 151 तथा परिसीमा अधिनियम, 1968 की धारा 5] – पति द्वारा विवाह-विच्छेद हेतु आवेदन फाइल किया जाना – कुटुंब न्यायालय विवाह-विच्छेद का एकपक्षीय डिक्री और आदेश पारित किया जाना – तत्पश्चात् पत्नी द्वारा एकपक्षीय रूप से पारित डिक्री और आदेश को अपास्त किए जाने हेतु आवेदन फाइल किया जाना जिसे कुटुंब न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया जाना – पत्नी द्वारा कुटुंब न्यायालय के समक्ष सुनवाई की तारीखों पर अनुपस्थिति के संबंध में युक्तिसंगत स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया जाना – कुटुंब न्यायालय द्वारा पारित विवाह-विच्छेद की डिक्री और आदेश अपास्त होने योग्य हैं ।

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 136 [सपठित कुटुंब न्यायालय अधिनियम, 1984 की धारा 19] – विवाह-विच्छेद की एकपक्षीय डिक्री और आदेश के विरुद्ध उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल किया जाना

– उच्च न्यायालय द्वारा विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित किया जाना – यद्यपि पति उच्च न्यायालय द्वारा विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित किए जाने और उस डिक्री के विरुद्ध अपील किए जाने और उस डिक्री के विरुद्ध अपील फाइल न किए जाने की स्थिति में पुनर्विवाह किया जा सकता है किन्तु विवाह के पक्षों का यह कर्तव्य है कि वे इस बात को सुनिश्चित कर लें कि उच्च न्यायालय के आदेश के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय के समक्ष कोई विशेष इजाजत याचिका फाइल नहीं की गई है ।

वर्तमान मामले के संक्षेप में तथ्य इस प्रकार हैं कि इस अपील का निपटारा किए जाने के लिए संक्षेप में तात्विक तथ्य सार ये हैं कि प्रत्यर्थी का अपीलार्थी के साथ विवाह हिन्दू रीतिरिवाजों के अनुसार तारीख 6 मई, 2011 को संपन्न हुआ था । वे कुछ समय के लिए एकसाथ रहे थे और तत्पश्चात् पृथक् हो गए । विवाह के पश्चात् याची-आपीलार्थी ने सितम्बर, 2012 में एक बच्चे को जन्म दिया । तारीख 30 मई, 2012 को प्रत्यर्थी, जो इस मामले में याची नहीं है, ने क्रूरता के आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री मंजूर किए जाने की ईप्सा करते हुए विवाह के विघटन के लिए जयपुर के कुटुंब न्यायालय संख्या 1 में याचिका फाइल की । उक्त याचिका मंजूरी हो गई और जयपुर के कुटुंब न्यायालय संख्या 1 द्वारा तारीख 11 जनवरी, 2013 को एकपक्षीय डिक्री पारित की गई । तत्पश्चात् तारीख 24 मई, 2013 को याची-अपीलार्थी ने जयपुर के कुटुंब न्यायालय संख्या 1 में 1963 के परिसीमन अधिनियम की धारा 5 के अधीन विलंब माफी के लिए आवेदन के साथ 1908 की सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9, नियम 13 सपठित धारा 151 के अधीन आवेदन फाइल किया जिसे बाद में जयपुर के कुटुंब न्यायालय संख्या 2 को स्थानांतरित कर दिया । आवेदन में यह भी अभिकथित किया है कि विवाह के पश्चात् अपीलार्थी गर्भवती हो गई थी और वह अलवर में अपने पिता के घर चली गई थी क्योंकि प्रत्यर्थी अपीलार्थी का उत्पीड़न करता था और उसे यातना देता था । यह भी अभिकथित किया है कि गर्भावस्था के दौरान, शारीरिक रूप से कमजोर और बीमार हो गई थी और निरंतर चिकित्सकों की निगरानी और देखभाल के अधीन थी । इस अवधि के दौरान, अलवर स्थित उसके घर पर न्यायालय द्वारा भेजे गए समन को उसके कुटुंब के एक सदस्य द्वारा प्राप्त किया गया था, जिसने उस समन को उसकी गंभीर स्थिति के कारण उसकी जानकारी के बिना अलग रख दिया था और उसकी माता, जो इंदौर में रह रही थी, उसको एक एंबुलेंस में इंदौर ले

गई, जहां उसने सितम्बर, 2012 में एक बच्चे को जन्म दिया । यह भी अभिकथित किया है कि अपीलार्थी-पत्नी को तारीख 11 नवम्बर, 2013 को अपने विरुद्ध पारित एकपक्षीय डिक्री की जानकारी नहीं थी । मई, 2013 में अपीलार्थी-पत्नी इंदौर से अपने पिता के घर अलवर वापस आई थी, जहां उसे कुटुंब न्यायालय द्वारा भेजे गए विवाह-विच्छेद याचिका के नोटिस के बारे में जानकारी मिली । यह भी अधिकथित किया है कि तत्पश्चात् अपीलार्थी-पत्नी ने विवाह-विच्छेद याचिका की प्रास्थिति का पता लगाने के लिए अपने कुटुंब के सदस्य को न्यायालय भेजा और तत्पश्चात् उसकी जानकारी में आया कि विवाह-विच्छेद की याचिका पर तारीख 11 जनवरी, 2013 को एकपक्षीय डिक्री पारित कर दी गई है । यह भी अधिकथित किया है कि उपर्युक्त परिस्थितियों में अपीलार्थी-पत्नी न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने में असमर्थ थी और उसके द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 9, नियम 13 के अधीन आवेदन फाइल करने में कारित विलंब को माफ कर दिया जाए और उसके विरुद्ध तारीख 11 जनवरी, 2013 को पारित एकपक्षीय डिक्री को अपास्त किए और उसे सुनवाई का एक अवसर प्रदान किए जाने का भी अनुरोध किया । प्रत्यर्थी-पति ने आवेदन के सभी तात्विक प्रकथनों से इनकार करते हुए उत्तर फाइल किया और उसने अपने उत्तर में यह अभिकथन किया कि विवाह-विच्छेद याचिका के समन अपीलार्थी-पत्नी पर सम्यक् रूप से तामील हो गए थे और उसे मामले के लंबित होने के बाबत पूरी जानकारी थी । उसने यह भी अभिकथन किया कि अपीलार्थी बीमार नहीं थी और उसने इस संबंध में कोई चिकित्सा प्रमाणपत्र प्रस्तुत नहीं किया है । उसने आगे यह भी अभिकथन किया कि अपीलार्थी ने सितम्बर, 2012 में एक बच्चे को जन्म दिया था जबकि विवाह-विच्छेद याचिका में निर्णय तारीख 11 जनवरी, 2013 को पारित हुआ था । उसने आगे यह भी अभिकथन किया कि आवेदन प्रत्यर्थी-पति के पुनर्विवाह, जो विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित किए जाने के पश्चात् संपन्न हुआ था, को विफल करने के उद्देश्य से फाइल किया गया है और एकपक्षीय डिक्री अपास्त किए जाने के प्रयोजनार्थ फाइल किए गए आवेदन को खारिज करने का अनुरोध किया । पक्षकारों को सुनने के पश्चात्, विद्वान् कुटुंब न्यायालय ने तारीख 15 जुलाई, 2016 को आक्षेपित आदेश द्वारा तारीख 11 जनवरी, 2013 के पारित एकपक्षीय डिक्री को अपास्त कराए जाने के प्रयोजनार्थ सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9, नियम 13 सपठित धारा 151 के अधीन अपीलार्थी-पत्नी द्वारा

फाइल किए गए आवेदन को खारिज कर दिया । अपीलार्थी-पत्नी ने तारीख 15 जुलाई, 2016 के आक्षेपित आदेश से व्यथित और निराश होकर, यह अपील फाइल की । न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – वर्तमान मामले में, अपीलार्थी-पत्नी ने तारीख 21 अगस्त, 2012 को और सुनवाई की आगामी तारीखों को विद्वान् कुटुंब न्यायालय में अपनी उपस्थिति अभिलिखित न कराए जाने का युक्तिसंगत स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया है । इसी प्रकार से, अपीलार्थी-पत्नी ने परिसीमा की विहित अवधि के भीतर एकपक्षीय डिक्री को अपास्त किए जाने के प्रयोजनार्थ आवेदन प्रस्तुत न किए जाने का भी युक्तिसंगत स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया है, इसलिए विद्वान् कुटुंब न्यायालय द्वारा इस संबंध में निकाला गया निष्कर्ष (एकपक्षीय डिक्री को अपास्त किए जाने के प्रयोजनार्थ फाइल किया गया) नहीं है । प्रत्यर्थी-पति ने यह अभिवाक् किया है कि मान्य ठहराए जाने योग्य आवेदन विवाह-विच्छेद की डिक्री के पश्चात् उसके द्वारा किए गए पुनर्विवाह को विफल किए जाने के प्रयोजनार्थ फाइल किया गया है । यहां पर यह भी किया जाना उल्लेख उचित होगा कि प्रत्यर्थी-पति ने आवेदन के उत्तर में द्वितीय विवाह की तारीख और द्वितीय पत्नी के नाम का प्रकटीकरण नहीं किया है । यह भी उल्लेख करना उचित होगा कि प्रत्यर्थी-पति द्वितीय विवाह के बारे में कोई विधिक साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया है । यहां तक कि, न तो स्वयं प्रत्यर्थी-पति ने और न ही उसके भाई आदर्श किशोर (अविश्वसनीय आवेदक साक्षी -2) ने विद्वान् कुटुंब न्यायालय द्वारा अभिलिखित किए अपने अभिसाक्ष्य में द्वितीय विवाह के बारे में एक शब्द भी नहीं कहा है । इसलिए, विद्वान् कुटुंब न्यायालय द्वारा अपील फाइल किए जाने के प्रयोजनार्थ परिसीमा अवधि के व्यतीत हो जाने के पश्चात् द्वितीय विवाह किए जाने के बारे में अभिलिखित किया गया निष्कर्ष मान्य ठहराए जाने योग्य नहीं है । उपरोक्त पर विचार करते हुए युक्तियुक्तता के आधार पर लागू होने वाले सिद्धांत विवाह-विच्छेद की एकपक्षीय डिक्री को अपास्त किए जाने के प्रयोजनार्थ की गई कार्यवाहियों पर भी लागू किया जा सकता है, जो विधि के अंतर्गत उपबंधित अनुतोष है । तर्क प्रयोजनार्थ, भले ही यह उपधारणा की गई है कि प्रत्यर्थी-पति ने तारीख 11 जनवरी, 2013 को विवाह-विच्छेद की एकपक्षीय डिक्री के पारित होने के पश्चात् द्वितीय विवाह किया है तो भी सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9 के नियम 13 के अधीन फाइल की गईं कार्यवाहियां निष्फल नहीं हो जातीं । उपरोक्त की गई चर्चाओं को ध्यान में रखते हुए, विद्वान् कुटुंब न्यायालय का

दृष्टिकोण पूर्णतः रूढिबद्ध पाया जाता है । अपीलार्थी-पत्नी ने तारीख 11 जनवरी, 2013 के विवाह-विच्छेद के एकपक्षीय निर्णय और डिक्री को अपास्त किए जाने के प्रयोजनार्थ है । इसके विपरीत विद्वान् कुटुंब न्यायालय द्वारा निकाला गया साक्ष्य के गलत समझ और निर्वचन पर आधारित है, अतः यह विधिविरुद्ध और दुराग्राही हैं और इसलिए इसे मान्य नहीं ठहराया जा सकता । फलस्वरूप, अपील मंजूर की जाती है, अपीलार्थी-पत्नी द्वारा तारीख 11 जनवरी, 2013 के एकपक्षीय निर्णय और डिक्री को अपास्त किए जाने के प्रयोजनार्थ सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9 के नियम 13 सपठित धारा 151 के अधीन फाइल किए गए आवेदन को मंजूर किया जाता है और उक्त निर्णय और डिक्री को अपास्त किया जाता है । विद्वान् कुटुंब न्यायालय विवाह-विच्छेद याचिका पर विधि के अनुसार विचार करेंगे । (पैरा 24, 25 ,28, 29 और 30)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2002]	[2000] 2 एस. सी. आर. 97 : **जी.पी. श्रीवास्तव** बनाम **आर. के. रायजाद और अन्य ;**	24
[1980]	ए. आई. आर. 1989 एस. सी. 1477 : **लता कामत** बनाम **विलास ;**	26
[1969]	ए. आई. आर. 1969 मद्रास 405 : **वथसाला** बनाम **एन. मनोहरण ।**	26

अपील (सिविल) अधिकारिता : 2016 की डी. बी. सिविल प्रकीर्ण अपील सं. 4446.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री मोहित गुप्ता, अधिवक्ता

प्रत्यर्थी की ओर से श्री राजेन्द्र सिंह तंवर, अधिवक्ता

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति दिनेश चन्द्र सोमानी ने दिया ।

न्या. सोमानी – याची अपीलार्थी द्वारा वर्तमान अपील 2015 के मामला संख्या 179 में जयपुर के कुटुंब न्यायालय संख्या 2 (जिसे इसमें इसके

पश्चात् "कुटुंब न्यायालय" कहा गया है) के न्यायाधीश द्वारा पारित तारीख 15 जुलाई, 2016 के आदेश के विरुद्ध 1984 के कुटुंब न्यायालय अधिनियम की धारा 19 के अधीन फाइल की गई है जिसके द्वारा याची-अपीलार्थी द्वारा तारीख 11 जनवरी, 2013 को सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9, नियम 13 सपठित के अधीन धारा 151 फाइल किए गए आवेदन को खारिज कर दिया ।

2. इस अपील का निपटारा किए जाने के लिए संक्षेप में तात्विक तथ्य सार ये हैं कि प्रत्यर्थी का अपीलार्थी के साथ विवाह हिन्दू रीतिरिवाजों के अनुसार तारीख 6 मई, 2011 को संपन्न हुआ था । वे कुछ समय के लिए एकसाथ रहे थे और तत्पश्चात् पृथक् हो गए । विवाह के पश्चात् याची-आपीलार्थी ने सितम्बर, 2012 में एक बच्चे को जन्म दिया । तारीख 30 मई, 2012 को प्रत्यर्थी, जो इस मामले में याची नहीं है, ने क्रूरता के आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री मंजूर किए जाने की ईप्सा करते हुए विवाह के विघटन के लिए जयपुर के कुटुंब न्यायालय संख्या 1 में याचिका फाइल की । उक्त याचिका मंजूरी हो गई और जयपुर के कुटुंब न्यायालय संख्या 1 द्वारा तारीख 11 जनवरी, 2013 को एकपक्षीय डिक्री पारित की गई ।

3. तत्पश्चात् तारीख 24 मई, 2013 को याची-अपीलार्थी ने जयपुर के कुटुंब न्यायालय संख्या 1 में 1963 के परिसीमन अधिनियम की धारा 5 के अधीन विलंब माफी के लिए आवेदन के साथ 1908 की सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9, नियम 13 सपठित धारा 151 के अधीन आवेदन फाइल किया जिसे बाद में जयपुर के कुटुंब न्यायालय संख्या 2 को स्थानांतरित कर दिया । आवेदन में यह भी अभिकथित किया है कि विवाह के पश्चात् अपीलार्थी गर्भवती हो गई थी और वह अलवर में अपने पिता के घर चली गई थी क्योंकि प्रत्यर्थी अपीलार्थी का उत्पीड़न करता था और उसे यातना देता था ।

4. यह भी अभिकथित किया है कि गर्भावस्था के दौरान, शारीरिक रूप से कमजोर और बीमार हो गई थी और निरंतर चिकित्सकों की निगरानी और देखभाल के अधीन थी । इस अवधि के दौरान, अलवर स्थित उसके घर पर न्यायालय द्वारा भेजे गए समन को उसके कुटुंब के एक सदस्य द्वारा प्राप्त किया गया था, जिसने उस समन को उसकी गंभीर

स्थिति के कारण उसकी जानकारी के बिना अलग रख दिया था और उसकी माता, जो इंदौर में रह रही थी, उसको एक एंबुलेंस में इंदौर ले गई, जहां उसने सितम्बर, 2012 में एक बच्चे को जन्म दिया ।

5. यह भी अभिकथित किया है कि अपीलार्थी-पत्नी को तारीख 11 नवम्बर, 2013 को अपने विरुद्ध पारित एकपक्षीय डिक्री की जानकारी नहीं थी । मई, 2013 में अपीलार्थी-पत्नी इंदौर से अपने पिता के घर अलवर वापस आई थी, जहां उसे कुटुंब न्यायालय द्वारा भेजे गए विवाह-विच्छेद याचिका के नोटिस के बारे में जानकारी मिली । यह भी अधिकथित किया है कि तत्पश्चात् अपीलार्थी-पत्नी ने विवाह-विच्छेद याचिका की प्रास्थिति का पता लगाने के लिए अपने कुटुंब के सदस्य को न्यायालय भेजा और तत्पश्चात् उसकी जानकारी में आया कि विवाह-विच्छेद की याचिका पर तारीख 11 जनवरी, 2013 को एकपक्षीय डिक्री पारित कर दी गई है । यह भी अधिकथित किया है कि उपर्युक्त परिस्थितियों में अपीलार्थी-पत्नी न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने में असमर्थ थी और उसके द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 9, नियम 13 के अधीन आवेदन फाइल करने में कारित विलंब को माफ कर दिया जाए और उसके विरुद्ध तारीख 11 जनवरी, 2013 को पारित एकपक्षीय डिक्री को अपास्त किए और उसे सुनवाई का एक अवसर प्रदान किए जाने का भी अनुरोध किया ।

6. प्रत्यर्थी-पति ने आवेदन के सभी तात्विक प्रकथनों से इनकार करते हुए उत्तर फाइल किया और उसने अपने उत्तर में यह अभिकथन किया कि विवाह-विच्छेद याचिका के समन अपीलार्थी-पत्नी पर सम्यक् रूप से तामील हो गए थे और उसे मामले के लंबित होने के बाबत पूरी जानकारी थी । उसने यह भी अभिकथन किया कि अपीलार्थी बीमार नहीं थी और उसने इस संबंध में कोई चिकित्सा प्रमाणपत्र प्रस्तुत नहीं किया है । उसने आगे यह भी अभिकथन किया कि अपीलार्थी ने सितम्बर, 2012 में एक बच्चे को जन्म दिया था जबकि विवाह-विच्छेद याचिका में निर्णय तारीख 11 जनवरी, 2013 को पारित हुआ था । उसने आगे यह भी अभिकथन किया कि आवेदन प्रत्यर्थी-पति के पुनर्विवाह, जो विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित किए जाने के पश्चात् संपन्न हुआ था, को विफल करने के उद्देश्य से फाइल किया गया है और एकपक्षीय डिक्री अपास्त किए जाने के प्रयोजनार्थ फाइल किए गए आवेदन को खारिज करने का अनुरोध किया ।

7. पक्षकारों को सुनने के पश्चात्, विद्वान् कुटुंब न्यायालय ने तारीख 15 जुलाई, 2016 को आक्षेपित आदेश द्वारा तारीख 11 जनवरी, 2013 पारित के एकपक्षीय डिक्री को अपास्त कराए जाने के प्रयोजनार्थ सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9, नियम 13 सपठित धारा 151 के अधीन अपीलार्थी-पत्नी द्वारा फाइल किए गए आवेदन को खारिज कर दिया ।

8. अपीलार्थी-पत्नी ने तारीख 15 जुलाई, 2016 के आक्षेपित आदेश से व्यथित और निराश होकर, यह अपील फाइल की ।

9. पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुना ।

10. अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल श्री मोहित गुप्ता ने यह दलील दी कि विद्वान् कुटुंब न्यायालय ने इस तथ्य पर विचार न करने में गंभीर त्रुटि कारित की है कि समन की तामीली के दौराना अपीलार्थी शारीरिक रूप से कमजोर थी और गर्भावस्था के अंतिम चरण में थी और इसके अतिरिक्त उसके भ्रूण में जटिलताएं उत्पन्न हो गई थीं, इसलिए अपीलार्थी की माता उसको चिकित्सीय उपचार के लिए इंदौर ले गई थी जहां उसने सितम्बर, 2012 के माह में बच्चे को जन्म दिया ।

11. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह भी निवेदन किया कि यह सुव्यस्थित विधि है कि वादकारी को सुनवाई का युक्तिसंगत अवसर प्रदान किए जाने से वंचित नहीं किया जाना चाहिए और इस कारणवश कुटुंब न्यायालय द्वारा व्यवहारिक दृष्टिकोण अपनाया जाना अपेक्षित था और अपीलार्थी-पत्नी के विरुद्ध पारित एकपक्षीय डिक्री अपास्त किए जाने योग्य है और उसे मामले में सुनवाई का युक्तिसंगत अवसर प्रदान किया जाना चाहिए ।

12. इसके विपरीत, प्रत्यर्थी-पति के विद्वान् काउंसेल श्री राजेन्द्र सिंह ने अपीलार्थी-पत्नी के विद्वान् काउंसेल की दलीलों का दृढ़तापूर्वक विरोध किया और विद्वान् कुटुंब न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश को समर्थन किया । विद्वान् काउंसेल ने दलील दी कि कुटुंब न्यायालय द्वारा जारी किए गए विवाह-विच्छेद याचिका के समन अपीलार्थी पर विधिवत रूप से तामील किए गए थे और उसके पास मामले की संपूर्ण जानकारी है किंतु वह जानबूझकर और उपेक्षापूर्वक विवाह-विच्छेद याचिका की प्रतिरक्षा के लिए न्यायालय के समक्ष उपस्थित होना नहीं चाहती ।

13. प्रत्यर्थी-पति के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि अपीलार्थी ने अपनी कथित बीमारी के संबंध में कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया । अपीलार्थी के अनुसार, उसने 2012 के सितम्बर माह में एक बच्चे को जन्म दिया और विवाह-विच्छेद याचिका तारीख 11 जनवरी, 2013 को निर्णीत हुई, इसलिए उसके पास विवाह-विच्छेद याचिका की प्रतिरक्षा के प्रयोजनार्थ कुटुंब न्यायालय में उपस्थित होने का पर्याप्त अवसर था किन्तु उसने ऐसा नहीं किया और उसने विवाह-विच्छेद की डिक्री के पश्चात् प्रत्यर्थी-पति के पुनर्विवाह के अनुष्ठापन से हताश होने के कारण डिक्री अपास्त किए जाने के लिए वर्तमान आवेदन फाइल किया ।

14. हमने पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों की प्रतिद्वंदी दलीलों पर उत्सुकता से विचार किया और मामले के अभिलेख का परिशीलन किया ।

15. अपीलार्थी-पत्नी ने एकपक्षीय डिक्री अपास्त किए जाने के आवेदन के समर्थन में अपनी परीक्षा अभि. सा. 1 के रूप में कराई और शपथपूर्वक कथन किया कि वह विवाह-विच्छेद याचिका के लंबित रहने के दौरान गर्भावस्था के अंतिम चरण में थी और बीमार थी, इसलिए वह न्यायालय में उपस्थित नहीं हो सकी थी । उसने यह भी अभिसाक्ष्य दिया कि उसे बच्चे के जन्म के पश्चात् अपने पिता से एकपक्षीय डिक्री की जानकारी मिली थी । अपीलार्थी-पत्नी ने प्रतिपरीक्षा के दौरान, शपथपूर्वक कथन किया कि उसके बच्चे का जन्म तारीख 18 सितम्बर, 2012 को हुआ था ।

16. इन बातों का खंडन करते हुए, प्रत्यर्थी-पति ने अपना और अपने भाई आदर्श किशोर की क्रमशः ए.वी.डब्ल्यू. 1 और ए.वी.डब्ल्यू. 2 के रूप में परीक्षा कराई थी । प्रत्यर्थी-पति ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि उसके द्वारा फाइल की गई विवाह-विच्छेद याचिका का नोटिस अपीलार्थी-पत्नी को तामिल कराया परन्तु तामिल के बावजूद, वह न्यायालय में उपस्थित नहीं हुई थी, इसलिए तारीख 11 जनवरी, 2013 को एकपक्षीय आदेश उसके विरुद्ध पारित किया । तत्पश्चात् उसने विवाह-विच्छेद के बारे में पत्नी को सूचना दिए जाने हेतु नोटिस भेजा परन्तु उसने नोटिस को प्राप्त नहीं किया । अपने प्रतिपरीक्षा में, प्रत्यर्थी-पति ने इस सुझाव से इनकार किया कि उसकी पत्नी गर्भावस्था के दौरान न्यायालय में उपस्थित नहीं हुई थी ।

17. अविश्वनीय साक्षी-2 आदर्श किशोर ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि

उसे नहीं मालूम कि अपीलार्थी-पत्नी पर विवाह-विच्छेद का नोटिस तामील हुआ था या नहीं । इस साक्षी ने अपनी प्रतिपरीक्षा में जानकारी की कमी के कारण उसको दिए गए समस्त सुझावों से इनकार किया है ।

18. विद्वान् कुटुंब न्यायालय ने दो कारणोंवश एकपक्षीय डिक्री को अपास्त किए जाने के प्रयोजनार्थ प्रस्तुत किए गए आवेदन को खारिज कर दिया अर्थात् (1) अपीलार्थी-पत्नी ने रजिस्ट्रीकृत डाक द्वारा भेजे गए विवाह-विच्छेद के नोटिस को प्राप्त किया था और संबंधित प्राप्ति के विधिवत हस्ताक्षर इसमें अभिलेख पर है । अपालार्थी-पत्नी ने यह दर्शाने के लिए कोई विधिक साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया था कि उसे पति द्वारा फाइल की गई विवाह-विच्छेद याचिका का प्रतिवादी करने के प्रयोजनार्थ न्यायालय में उपस्थित होने से रोकने का कोई पर्याप्त कारण था, (2) विवाह-विच्छेद की एकपक्षीय डिक्री के पारित होने और अपील फाइल किए जाने के प्रयोजनार्थ विहित समय सीमा की अवधि की समाप्ति के पश्चात् प्रत्यर्थी-पति ने द्वितीय विवाह कर लिया है संविदा की है और वह अपनी द्वितीय पत्नी के साथ रह रहा है ।

19. अपीलार्थी-पत्नी का पक्षकथन यह है कि वह विवाह-विच्छेद याचिका के लंबित रहने के दौरान वह बीमार और गर्भवती थी, इसलिए वह कुटुंब न्यायालय के समक्ष उपस्थित नहीं हो सकी और अपीलार्थी-पत्नी की नाज़ुक स्थिति होने के कारण, उसकी माता उसको अपने साथ एंबुलेंस में इंदौर ले गई थी जहां वह रहती थी । तत्पश्चात् अपीलार्थी-पत्नी ने तारीख 18 सितम्बर, 2012 को इन्दौर में एक बच्चे को जन्म दिया । अपीलार्थी-पत्नी इंदौर में 6-7 महीने रही थी । मई, 2013 में इंदौर से वापस आने के पश्चात् अपीलार्थी-पत्नी के पिता ने उसको न्यायालय के नोटिस के बारे में बताया था । तत्पश्चात् उसने अपने कुटुंब के सदस्यों द्वारा मामले की जांच कराई और उसको एकपक्षीय डिक्री के बारे में जानकारी हुई । तत्पश्चात् उसने तारीख 24 मई, 2013 को एकपक्षीय डिक्री को अपास्त किए जाने के लिए आवेदन फाइल किया । इस प्रकार एकपक्षीय डिक्री को अपास्त कराए जाने का आवेदन डिक्री की तारीख से तीन मास पश्चात् फाइल किया गया । प्रत्यर्थी-पति इस तथ्य से इनकार नहीं किया है कि अपीलार्थी ने तारीख 18 सितम्बर, 2012 को इंदौर में बच्चे को जन्म दिया था ।

20. विवाह-विच्छेद याचिका के अभिलेख का परिशीलन करने से, यह प्रकट होता है कि प्रत्यर्थी-पति ने तारीख 30 मई, 2012 को याचिका

फाइल की थी जो तारीख 5 जून, 2012 को रजिस्ट्रीकृत हुई थी और अपीलार्थी-पत्नी को समन जारी किए जाने के लिए आगामी तारीख 21 अगस्त, 2012 निर्धारित की गई थी । तारीख 21 अगस्त, 2012 का नोटिस जारी किया गया था और उसे अपीलार्थी-पत्नी को रजिस्ट्रीकृत डाक द्वारा भेजा गया था । यह भी प्रकट होता है कि अपीलार्थी-पत्नी द्वारा हस्ताक्षरित डाक की प्राप्ति अभिलेख पर उपलब्ध है । नोटिस तामील के बावजूद, अपीलार्थी-पत्नी न्यायालय में उपस्थित नहीं हुई, इसलिए एकपक्षीय कार्यवाही आरंभ की गई । तत्पश्चात् प्रत्यर्थी-पति और उसके साक्षी के कथन अभिलिखित किए गए और विद्वान् कुटुंब न्यायालय ने तारीख 11 जनवरी, 2013 को अपीलार्थी-पत्नी के विरुद्ध एकपक्षीय निर्णय और डिक्री पारित की ।

21. उपर्युक्त बातों को दृष्टिगत करते हुए, यह सिद्ध हो गया है कि अपीलार्थी-पत्नी ने तारीख 18 सितम्बर, 2012 को बच्चे जन्म दिया था, इसलिए यह अनुमान लगाया जा सकता है कि जब विवाह-विच्छेद याचिका फाइल की थी तब वह गर्भवती थी, उसको नोटिस जारी किया गया था और तामिल भी हो गया था । इस प्रकार यह उपधारणा की जा सकती है कि वह गर्भावस्था के कारण तारीख 21 अगस्त, 2012 को न्यायालय में उपस्थित होने में असमर्थ थी, जो न्यायालय में, जब उससे न्यायालय में उपस्थित होने की अपेक्षा की गई थी, तो उपस्थित न हो पाने के लिए पर्याप्त कारण था । यह भी विवादित नहीं है कि सुसंगत समय पर, अपीलार्थी-पत्नी की माता इंदौर में रह रही थी ।

22. प्रत्यर्थी-पति के अभिवचनों के आधार पर यह पक्षकथन है कि अपीलार्थी-पत्नी ने तारीख 13 फरवरी, 2012 को अपना वैवाहिक घर छोड़ दिया था और वह अलवर में अपने पिता के घर चली गई थी । प्रत्यर्थी-पति ने तारीख 30 मई, 2012 को विवाह-विच्छेद याचिका फाइल की थी और तारीख 21 अगस्त, 2012 को उपस्थित होने प्रयोजनार्थ नोटिस जारी किए गए थे, अपीलार्थी-पत्नी के विरुद्ध तारीख 21 सितम्बर, 2012 को एकपक्षीय कार्यवाहियां आरंभ की गईं, प्रत्यर्थी-पति और उसके साक्षी के साक्ष्य आगामी तारीख 19 दिसम्बर, 2012 को अभिलिखित किए गए और अपीलार्थी-पत्नी के विरुद्ध एकपक्षीय निर्णय और डिक्री तारीख 11 जनवरी, 2013 को पारित किए गए । उपरोक्त तथ्यों से यह दर्शित होता है कि अपीलार्थी-पत्नी अपनी वैवाहिक घर छोड़ने की कथित तारीख को गर्भवती

थी और प्रत्यर्थी-पति ने जानबूझकर अपीलार्थी-पत्नी के गर्भावस्था के दौरान विवाह-विच्छेद याचिका फाइल किए जाने का समय चुना । जैसाकि ऊपर उल्लेख किया गया है, वह तारीख 21 अगस्त, 2012, जिस तारीख को सुनवाई किए जाने के लिए विद्वान् कुटुंब न्यायालय नोटिस द्वारा जारी किया गया, गर्भावस्था के अग्रिम अवस्था में और बीमार थी एकपक्षीय डिक्री पारित होने के लगभग तीन माह के पश्चात्, अपीलार्थी-पत्नी ने 1908 की सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9 के नियम 13 के अधीन आवेदन फाइल किया है । प्रत्यर्थी-पति ने एकपक्षीय डिक्री पारित होने के तुंरत पश्चात् कथित रूप से द्वितीय विवाह कर लिया है । मामले की परिस्थितियों से यह दर्शित होता है कि यह रिष्टि का मामला है जिसको प्रत्यर्थी-पति ने जानबूझकर कारित किया है और उसने अपीलार्थी-पत्नी के खराब स्वास्थ्य का अनुचित लाभ लिया है । विद्वान् कुटुंब न्यायालय को पक्षकारों के हितों की सीमा को ध्यान में रखना होता है और सभी प्रश्नों को ध्यान में रखते हुए, सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9 के नियम 13 के अधीन आवेदन फाइल किए जाने के विलंब पर विचार किया जाना चाहिए था । परन्तु विद्वान् कुटुंब न्यायालय द्वारा एकपक्षीय डिक्री को अपास्त किए जाने के लिए फाइल किए गए आवेदन का निर्णय करते समय कारकों पर विचार नहीं किया गया ।

23. अपीलार्थी-पत्नी के पक्षकथन कि गर्भावस्था में उसकी नाज़ुक स्थिति के कारण उसकी माता उसे एंबुलेंस में इंदौर में ले गई, जहां उसने एक बच्चे को जन्म दिया और वहां 6-7 मास तक ठहरी थी और तत्पश्चात्, वह 2013 के मई माह में अलवर में पिता के घर वापस आ गई थी, का विश्वास न किया जाए, इस संबंध में अभिलेख पर ऐसा कुछ भी नहीं है ।

24. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **जी.पी. श्रीवास्तव** बनाम **आर. के. रायजादा और अन्य**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि किसी भी पर्याप्त कारण से शब्दों "उपस्थित होने से पर्याप्त कारणोंवश प्रवरित था" का अर्थावयन पक्षों, विशेष रूप से जब गलती करने वाले पक्ष के विरुद्ध कोई उपेक्षा या निष्क्रियता का आरोप साबित नहीं हुआ हो, के मध्य पूर्ण न्याय किए जाने के प्रयोजनार्थ किया जाना चाहिए ।

25. इस प्रकार, अपीलार्थी-पत्नी ने तारीख 21 अगस्त, 2012 को

---

[1] [2000] 2 एस. सी. आर. 97.

और सुनवाई की आगामी तारीखों को विद्वान् कुटुंब न्यायालय में अपनी उपस्थिति अभिलिखित न कराए जाने का युक्तिसंगत स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया है । इसी प्रकार से, अपीलार्थी-पत्नी ने परिसीमा की विहित अवधि के भीतर एकपक्षीय डिक्री को अपास्त किए जाने के प्रयोजनार्थ आवेदन प्रस्तुत न किए जाने का भी युक्तिसंगत स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया है, इसलिए विद्वान् कुटुंब न्यायालय द्वारा इस संबंध में निकाला गया निष्कर्ष (एकपक्षीय डिक्री को अपास्त किए जाने के प्रयोजनार्थ फाइल किया गया) नहीं है ।

26. प्रत्यर्थी-पति ने यह अभिवाक् किया है कि मान्य ठहराए जाने योग्य आवेदन विवाह-विच्छेद की डिक्री के पश्चात् उसके द्वारा किए गए पुनर्विवाह को विफल किए जाने के प्रयोजनार्थ फाइल किया गया है । यहां पर यह भी किया जाना उल्लेख उचित होगा कि प्रत्यर्थी-पति ने आवेदन के उत्तर में द्वितीय विवाह की तारीख और द्वितीय पत्नी के नाम का प्रकटीकरण नहीं किया है । यह भी उल्लेख करना उचित होगा कि प्रत्यर्थी-पति द्वितीय विवाह के बारे में कोई विधिक साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया है । यहां तक कि, न तो स्वयं प्रत्यर्थी-पति ने और न ही उसके भाई आदर्श किशोर (अविश्वसनीय आवेदक साक्षी 2) ने विद्वान् कुटुंब न्यायालय द्वारा अभिलिखित किए अपने अभिसाक्ष्य में द्वितीय विवाह के बारे में एक शब्द भी नहीं कहा है । इसलिए, विद्वान् कुटुंब न्यायालय द्वारा अपील फाइल किए जाने के प्रयोजनार्थ परिसीमा अवधि के व्यतीत हो जाने के पश्चात् द्वितीय विवाह किए जाने के बारे में अभिलिखित किया गया निष्कर्ष मान्य ठहराए जाने योग्य नहीं है ।

27. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **लता कामत** बनाम **विलास**[1] वाले मामले में मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा **वथसाला** बनाम **एन. मनोहरण**[2] वाले मामले में दिए गए निर्णय को निर्दिष्ट किया है और जो अभिनिर्धारित किया, इस प्रकार है :–

> "यद्यपि पति के लिए उच्च न्यायालय द्वारा डिक्री पारित किए जाने पश्चात् उसके विरुद्ध कोई अपील फाइल न किए जाने के कारण विवाह कर लेना अविधिपूर्ण नहीं है क्योंकि यह अधिकार उच्च न्यायालय द्वारा पारित डिक्री से उद्भूत हुआ है, फिर भी प्रत्यर्थी का यह कर्तव्य था कि इस बात को सुनिश्चित करता कि क्या इस

---

[1] ए. आई. आर. 1989 एस. सी. 1477.

[2] ए. आई. आर. 1969 मद्रास 405.

न्यायालय के समक्ष विशेष इजाजत के लिए कोई आवेदन फाइल किया गया है अथवा नहीं और वह उच्च की डिक्री के पश्चात् विवाह करके पत्नी को इस न्यायालय के समक्ष विशेष इजाजत याचिका प्रस्तुत करने के अवसर से वंचित नहीं कर सकता । यदि कोई व्यक्ति ऐसा करता है तो वह ऐसा अपने जोखिम करता है और इस न्यायालय से उस आधार पर विशेष इजाजत को प्रतिसंहृत करने का अनुरोध नहीं कर सकता ।"

28. उपरोक्त पर विचार करते हुए युक्तियुक्तता के आधार पर लागू होने वाले सिद्धांत विवाह-विच्छेद की एकपक्षीय डिक्री को अपास्त किए जाने के प्रयोजनार्थ की गई कार्यवाहियों पर भी लागू किया जा सकता है, जो विधि के अंतर्गत उपबंधित अनुतोष है । तर्क प्रयोजनार्थ, भले ही यह उपधारणा की गई है कि प्रत्यर्थी-पति ने तारीख 11 जनवरी, 2013 को विवाह-विच्छेद की एकपक्षीय डिक्री के पारित होने के पश्चात् द्वितीय विवाह किया है तो भी सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9 के नियम 13 के अधीन फाइल की गईं कार्यवाहियां निष्फल नहीं हो जातीं ।

29. उपरोक्त की गई चर्चाओं को ध्यान में रखते हुए, विद्वान् कुटुंब न्यायालय का दृष्टिकोण पूर्णतः रूढ़िबद्ध पाया जाता है । अपीलार्थी-पत्नी ने तारीख 11 जनवरी, 2013 के विवाह-विच्छेद के एकपक्षीय निर्णय और डिक्री को अपास्त किए जाने के प्रयोजनार्थ है । इसके विपरीत विद्वान् कुटुंब न्यायालय द्वारा निकाला गया साक्ष्य के गलत समझ और निर्वचन पर आधारित है, अतः यह विधिविरुद्ध और दुराग्राही हैं और इसलिए इसे मान्य नहीं ठहराया जा सकता ।

30. फलस्वरूप, अपील मंजूर की जाती है, अपीलार्थी-पत्नी द्वारा तारीख 11 जनवरी, 2013 के एकपक्षीय निर्णय और डिक्री को अपास्त किए जाने के प्रयोजनार्थ सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9 के नियम 13 सपठित धारा 151 के अधीन फाइल किए गए आवेदन को मंजूर किया जाता है और उक्त निर्णय और डिक्री को अपास्त किया जाता है । विद्वान् कुटुंब न्यायालय विवाह-विच्छेद याचिका पर विधि के अनुसार विचार करेंगे । कुटुंब न्यायालय का अभिलेख तुरंत वापस भेजा जाए ।

अपील मंजूर की गई ।

मही./अवि.

नारायण और अन्य

बनाम

चौथमल और अन्य

तारीख 21 अगस्त, 2018

न्यायमूर्ति महेन्द्र महेश्वरी

विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 (1963 का 47) – धारा 10, 34 और 38 – संविदा का विनिर्दिष्ट पालन, विक्रय पत्र का रजिस्ट्रीकरण और स्थायी निषेधाज्ञा – वादी द्वारा स्टाम्प पेपर खरीदे जाने के पश्चात् उन पर दस्तावेज का निष्पादन न कराए जाने, सम्पूर्ण विक्रय राशि का संदाय कर दिए जाने के बावजूद उप रजिस्ट्रार के समक्ष विक्रय विलेख का रजिस्ट्रीकरण न कराए जाने – प्रतिवादी द्वारा विक्रय करार के निष्पादन से इनकार किए जाने के बावजूद उसके हस्ताक्षरों की जांच हस्तलेखा विशेषज्ञ द्वारा न कराए जाने और हस्तलेखा विशेषज्ञ को साक्षी के रूप में न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत न किए जाने के कारण उसके द्वारा विक्रय करार के विनिर्दिष्ट पालन के प्रयोजनार्थ फाइल किया गया वाद पोषणीय नहीं है और खारिज किए जाने योग्य हैं ।

संक्षेप में मामले के तथ्य ये हैं कि अपीलार्थी-वादी और प्रत्यर्थी-प्रतिवादी के मध्य संबंध अत्यंत मधुर थे । दोनों पक्षों ने वादग्रस्त संपत्ति को संयुक्त रूप से खरीदा था । तत्पश्चात्, वादी ने प्रतिवादी से उसके भाग वाली संपत्ति का क्रय करने के प्रयोजनार्थ विक्रय करार किया और संपूर्ण विक्रय राशि का संदाय भी कर दिया, किन्तु अत्यधिक मधुर संबंध होने के कारण विक्रय विलेख का निष्पादन और रजिस्ट्रीकरण नहीं कराया । विवाद उत्पन्न होने पर अपीलार्थी वादी ने विनिर्दिष्ट पालन, घोषणा और निषेधाज्ञा का वाद फाइल किया । किन्तु अपीलार्थी-वादी ने विक्रय करार को साबित नहीं किया । प्रत्यर्थी-प्रतिवादी की ओर से स्टाम्प पेपर पर दस्तावेज के निष्पादन से इनकार किया गया है । अतः वादी का यह कर्तव्य था कि वह विक्रय करार को संतोषप्रद साक्ष्य प्रस्तुत करके संदेह के परे साबित करता । अपीलार्थी-वादी ने इस तथ्य को भी साबित नहीं किया कि स्टाम्प पेपर किस तारीख को और किस स्टाम्प वेंडर द्वारा खरीदे गए । वादी द्वारा स्टाम्प वेंडर का न्यायालय के समक्ष परीक्षण भी नहीं कराया गया और न ही

स्टाम्प वेंडर से संबंधित रजिस्ट्रर को न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करवा कर प्रत्यर्थी-प्रतिवादी के हस्ताक्षर प्रमाणित कराए गए जिससे यह साबित हो सकता कि प्रत्यर्थी-प्रतिवादी द्वारा वादग्रस्त भूमि का विक्रय किए जाने के प्रयोजनार्थ स्टाम्प वेंडर से स्टाम्प पेपर खरीदे गए थे । इसके अतिरिक्त, स्टाम्प पेपर खरीदे जाने की तारीख से स्टाम्प पर विक्रय करार निष्पादित किए जाने की तारीख के मध्य के समय अन्तराल के बाबत भी कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया । जिस स्थान पर स्टाम्प पेपर पर विक्रय करार का निष्पादित किया बताया गया है, उसके पुष्टि स्वयं अपीलार्थी-वादी के गवाह द्वारा नहीं की गई है । अतः वाद को साबित किए जाने के प्रयोजनार्थ अपीलार्थी-वादी द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्य के अवलोकन से यह स्पष्ट हो जाता है कि अपीलार्थी-वादी द्वारा न तो स्टाम्प पेपर खरीदे जाने और न ही खरीदे जाने के पश्चात् विक्रय विलेख का निष्पादन कराए जाने, विक्रय राशि का भुगतान किए जाने, विक्रय विलेख का सब-रजिस्ट्रार के समक्ष रजिस्ट्रीकरण न कराए जाने, प्रत्यर्थी-परिवादी द्वारा विक्रय करार के निष्पादन से इनकार किए जाने पर हस्तलेखा विषेशज्ञ से जांच न कराए जाने और विशेषज्ञ को गवाह के रूप में अधीनस्थ न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत न किए जाने के परिणामस्वरूप अधीनस्थ न्यायालय द्वारा विवाद्यक संख्या 1 से 4 अपीलार्थी-वादी के समक्ष निर्णीत किए जाने के प्रयोजनार्थ निकाले गए निष्कर्ष पूर्णतया न्यायोचित हैं और इस निर्णय में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है । तद्नुसार, अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – इस न्यायालय की राय में जहां प्रतिवादी की ओर से स्टाम्प के दस्तावेज के निष्पादन से इनकारी की गई है एवं जिसकी जानकारी वादी को जवाबदावा प्रस्तुति के दिन, विवाद्यक बनाने के समय ही हो चुकी हो, वहां वादी का यह कर्तव्य था कि वह एग्रीमेंट प्रदर्श 3 को संतोषप्रद साक्ष्य प्रस्तुत कर संदेह से परे प्रमाणित करे । वादी द्वारा अपनी साक्ष्य से स्टाम्प कौनसी तारीख को खरीदा गया है, किस व्यक्ति के द्वारा खरीदा गया है, इस तथ्य की जानकारी से भी इनकारी की है तथा वादी द्वारा दस्तावेज को संदेह से परे साबित करने के उद्देश्य से स्टाम्प वेण्डर को भी परीक्षित नहीं कराया गया है तथा न ही स्टाम्प वेण्डर से संबंधित रजिस्टर को प्रस्तुत कर प्रतिवादी के हस्ताक्षर प्रमाणित करवाए गए हैं, जिससे प्रकट हो सके कि प्रतिवादी द्वारा वादग्रस्त जमीन को विक्रय करने के उद्देश्य से संबंधित स्टाम्प वेण्डर से स्टाम्प खरीदा गया हो । इसके अतिरिक्त स्टाम्प खरीदने की तारीख से स्टाम्प के निष्पादन की तारीख के मध्य के समय

अंतराल बाबत भी कोई स्पष्ट हवाला प्रकट नहीं किया गया है । जहां तक स्टाम्प निष्पादन के स्थान का प्रश्न है, वादी ने अपनी जिरह में स्पष्ट रूप से प्रकट किया कि उसके दुपल्ले के आगे नीम के चबूतरे पर लिखा गया था । जबकि गवाह पी.ड. 4 रामधन ने स्टाम्प सांवलाराम द्वारा लिखा जाना और चौथमल प्रतिवादी के हस्ताक्षर अपने सामने करता तो बताया है, लेकिन जिरह में गवाह ने बताया है कि प्रदर्श 3 मूलचंद के घर पर लिखा गया था । उपरोक्त दोनों गवाहान के बयानों में स्थिति स्पष्ट है कि स्टाम्प का निष्पादन जिस स्थान पर होना वादी द्वारा बताया गया है, उसकी पुष्टि स्वयं वादी के गवाह द्वारा नहीं की गई है । इस न्यायालय की राय में विवाद्यक संख्या 1 व 4 के क्रम में कुछ हद तक निःसंदेह अधीनस्थ न्यायालय द्वारा डी.ड. 5 अनिल कुमार की साक्ष्य पर आधारित होकर निष्कर्ष दिया गया है, लेकिन डी.ड. 5 अनिल कुमार की साक्ष्य के क्रम में हुए विस्तृत प्रतिपरीक्षण और उसके निष्कर्ष की विश्वसनीयता के अनुरूप अधीनस्थ न्यायालय द्वारा निर्णय पारित किया गया है । उसी क्रम में वाद को प्रमाणित करने हेतु वादी की साक्ष्य को अवलोकन किए जाने पर प्रकट होता है कि वादी द्वारा न तो स्टाम्प को तारीख 28 अप्रैल, 1993 को खरीदने के पश्चात् तारीख 5 मई, 1993 के पूर्व तक निष्पादन नहीं करने का कारण, विक्रय पत्र की सम्पूर्ण राशि का भुगतान किए जाने के बावजूद भी विक्रय पत्र का सब-रजिस्ट्रार के समक्ष पंजीकरण नहीं करवाने, प्रतिवादी द्वारा इकरारनामा के निष्पादन से इनकारी करने पर वादी के स्तर पर विशेषज्ञ से जांच नहीं करवाये जाने एवं विशेषज्ञ को गवाह के तौर पर अधीनस्थ न्यायालय में प्रस्तुत नहीं किए जाने के परिणामस्वरूप अधीनस्थ न्यायालय द्वारा विवाद्यक संख्या 1 व 4 के क्रम में दिया गया निष्कर्ष पूर्णतः न्यायोचित है । जहां तक अन्य विवाद्यकों पर अधीनस्थ न्यायालय के निष्कर्ष का प्रश्न है, विवाद्यक संख्या 2 व 3 के क्रम में यह स्वीकृत स्थिति है कि प्रतिवादी संख्या 2 लगायत 5 के पक्ष में विक्रय पत्र निष्पादित हो चुका है एवं उसी विक्रय पत्र को निरस्त किए जाने एवं संविदा की विर्निदिष्ट अनुपालना के क्रम में वादी की ओर से प्रार्थना की गई है । ऐसी स्थिति में प्रतिवादी संख्या 2 लगायत 5 के पक्ष में विक्रय पत्र का निष्पादन होना अधीनस्थ न्यायालय द्वारा प्रमाणित माना गया है, जिसमें भी किसी प्रकार की त्रुटि नहीं है । उपरोक्तानुसार विवेचन की रोशनी में अधीनस्थ न्यायालय द्वारा पारित निर्णय, प्रकरण में उपलब्ध तथ्यात्मक स्थिति एवं साक्ष्य के आधार पर न्यायसंगत होने में उसमें किसी प्रकार के हस्तक्षेप की

आवश्यकता नहीं है । अतः प्रस्तुत अपील खारिज किए जाने योग्य है । परिणामतः अपीलार्थी-वादी की ओर से प्रस्तुत यह सिविल प्रथम अपील खारिज की जाती है । (पैरा 16, 17, 18, 19, 20 और 21)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[1999]	ए. आई. आर. 1999 एस. सी. 3318 : **हिमाचल प्रदेश राज्य** बनाम **जय लाल और अन्य ;**	5
[1977]	ए. आई. आर. 1977 एस. सी. 1091 : **माघन बिहारी लाल** बनाम **पंजाब राज्य ।**	5

अपील (सिविल) अधिकारिता : 2006 की एस. बी. सिविल प्रथम अपील सं. 529.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री राजीव सुराणा, अधिवक्ता

प्रत्यर्थी की ओर से डा. पी.सी. जैन और (सुश्री) ममता धारीवाल

न्यायमूर्ति महेन्द्र महेश्वरी – अधीनस्थ न्यायालय, अपर जिला न्यायाधीश (फास्ट ट्रेक), बांदीकुई मुख्यालय दौसा द्वारा वाद संख्या 11/2005 में पारित निर्णय एवं अंतिम डिक्री तारीख 19 अगस्त, 2006, जिसके तहत अपीलार्थी-वादी का वाद बाबत संविदा की विनिर्दिष्ट अनुपालना, निरस्त करने विक्रय पत्र तारीख 8 जून, 1995 एवं स्थायी निषेधाज्ञा खारिज किया गया है, से व्यथित होकर अपीलार्थी-वादी की ओर से यह अपील प्रस्तुत की गई है ।

2. अपील के लंबित रहने के दौरान अपीलार्थी की ओर से विविध प्रार्थना पत्र संख्या 24377/2016 प्रस्तुत कर प्रार्थना पत्र के साथ संलग्न दस्तावेज को रिकार्ड पर लिए जाने की प्रार्थना की गई है । इसी प्रकार एक अन्य विविध प्रार्थना पत्र संख्या 10235/2017 अंतर्गत आदेश 41 नियम 27 सिविल प्रक्रिया संहिता प्रस्तुत कर हस्तलेख विशेषज्ञ की रिपोर्ट तारीख 27 मार्च, 2017 को भी रिकार्ड पर लिए जाने की प्रार्थना की गई है ।

3. सर्वप्रथम उक्त दोनों प्रार्थना पत्रों को सुना गया । जहां तक विविध प्रार्थना पत्र संख्या 24377/2016 का प्रश्न है, इस क्रम में कार्यालय तहसीलदार लालसोट द्वारा मुर्तिब मौका परचा को रिकार्ड पर लिए जाने की प्रार्थना की गई है, जिसमें मात्र मौके पर खेत को पड़त के रूप में होना बताया गया है एवं जमीन को वादी मूलचंद वगैरा की होना बताया गया है । इस न्यायालय की राय में उक्त दस्तावेज के जरिये अधिक से अधिक अपीलार्थी-वादी ने वादग्रस्त जमीन पर अपना कब्जा होना बताया है, जबकि स्वीकृत रूप से वर्तमान प्रकरण संविदा की विनिर्दिष्ट अनुपालना के क्रम में दस्तावेज के निष्पादन से संबंधित है । ऐसी स्थिति में प्रार्थना पत्र के साथ संलग्न दस्तावेज पक्षकारान के मध्य उत्पन्न विवाद को ध्यान में रखते हुए सुसंगत नहीं होने के परिणामस्वरूप दस्तावेज को रिकार्ड पर लिए जाने का कोई औचित्य नहीं है । अतः विविध प्रार्थना पत्र संख्या 24377/2016 खारिज किया जाता है ।

4. जहां तक अन्य विविध प्रार्थना पत्र संख्या 10235/2017 अंतर्गत आदेश 41 नियम 27 सिविल प्रक्रिया संहिता का प्रश्न है, इस प्रार्थना पत्र के जरिए हस्तलेख विशेषज्ञ की रिपोर्ट/राय तारीख 27 मार्च, 2017 को भी रिकार्ड पर लिए जाने की प्रार्थना की गई है । उक्त रिपोर्ट एग्रीमेंट तारीख 5 मई, 1993 के क्रम में दी गई है एवं रिपोर्ट न्यायालय के आदेश से जारी नहीं होकर, प्राइवेट तौर पर प्राप्त की गई है । दूसरी आरे उक्त विशेषज्ञ की राय के क्रम में अपीलार्थी को अधीनस्थ न्यायालय में पर्याप्त अवसर था, लेकिन अपीलार्थी की ओर से अधीनस्थ न्यायालय में विशेषज्ञ की राय से संबंधित दस्तावेज न तो प्रस्तुत किया गया है, न ही विशेषज्ञ को न्यायालय में तलब करवाया गया है । इसके अतिरिक्त अधीनस्थ न्यायालय द्वारा संबंधित दस्तावेज पर विशेष डी.ड. 5 अनिल कुमार की राय व साक्ष्य के साथ-साथ अन्य तथ्यों को भी मद्देनजर रखते हुए गुणावगुण पर निर्णय पारित किया गया है । ऐसी स्थिति में इस स्टेज पर उक्त प्रार्थना पत्र स्वीकार किया जाना उचित नहीं है और खारिज किया जाता है ।

5. प्रथम अपील व प्रकरण के गुणावगुण पर दोनों पक्षों की बहस सुनी गई । योग्य अधिवक्ता अपीलार्थी-वादी का कथन रहा कि अधीनस्थ न्यायालय के समक्ष अपीलार्थी-वादी की ओर से प्रस्तुत प्रदर्श-3 इकरारनामा गवाहान के माध्यम से पूर्णतः साबित है तथा अधीनस्थ न्यायालय द्वारा मात्र प्रतिवादी पक्ष की ओर से प्रस्तुत गवाह हस्तलेख विशेषज्ञ डी.ड. 5 अनिल कुमार की साक्ष्य पर विश्वास कर निर्णय पारित किया गया है । उनका यह

भी कथन रहा कि डी.ड.5 अनिल कुमार की साक्ष्य महत्वहीन है क्योंकि उसके द्वारा नियमानुसार साक्ष्य एकत्रित कर साक्ष्य व राय नहीं दी गई है। उनका यह भी कथन रहा कि दोनों पक्षों द्वारा पूर्व मालिक से संयुक्त रूप से वादग्रस्त संपत्ति खरीदने के पश्चात् दोनों पक्षों के संबंध में अत्यंत नजदीकी होने के परिणामस्वरूप विक्रय की संपूर्ण राशि प्रत्यर्थी-प्रतिवादी को भुगतान किए जाने के बावजूद मात्र विश्वास के आधार पर विक्रय पत्र का निष्पादन व पंजीयन नहीं किया गया है। उनके अनुसार इकरारनामा के निष्पादन का खण्डन पत्रावली पर नहीं होने के परिणामस्वरूप मात्र प्रत्यर्थी की साक्ष्य को महत्व देकर अधीनस्थ न्यायालय द्वारा निर्णय पारित किया गया है। अतः अपील स्वीकार की जाकर अधीनस्थ न्यायालय का अपीलाधीन निर्णय व डिक्री अपास्त किए जाने की प्रार्थना की गई। अपने तर्क समर्थन में निम्न न्याय दृष्टांत प्रस्तुत किए गए।

1. **हिमाचल प्रदेश राज्य** बनाम **जय लाल और अन्य**[1]

2. **माघन बिहारी लाल** बनाम **पंजाब राज्य**[2]

6. इन तर्कों का खण्डन करते हुए योग्य अधिवक्ता प्रत्यर्थी-प्रतिवादी का कथन रहा कि वादी की ओर से प्रस्तुत वाद में अभिवचित कथनों का स्वयं वादी द्वारा अपने पैरों पर खड़े होकर सिद्ध करना है। वादी की ओर से प्रस्तुत साक्ष्य में स्वयं के अतिरिक्त तीन अन्य गवाहान को प्रस्तुत कर परीक्षित कराया गया है। उनका कथन रहा कि वादी गवाहान की साक्ष्य में न केवल विरोधाभास है, बल्कि इकरारनामा प्रदर्श-3 के निष्पादन पर संदेह उत्पन्न करते हैं। उक्त दस्तावेज को पूर्णतः प्रमाणित करने का भार स्वयं वादी पर होने के बावजूद वादी की ओर से उक्त दस्तावेज विश्वसनीय व सुदृढ़ साक्ष्य के माध्यम से साबित नहीं हुआ है। उनका यह भी कथन रहा कि अधीनस्थ न्यायालय में विशेषज्ञ की राय एवं साक्ष्य के अतिरिक्त अन्य मौखिक साक्ष्य प्रस्तुत की गई है, वह दस्तावेज को प्रमाणित करने के लिए प्रर्याप्त नहीं है। उनका यह भी कथन रहा है कि वादी की ओर से विक्रय पत्र की सम्पूर्ण राशि दिए जाने के बावजूद भी मात्र रजिस्ट्रेशन कराया जाना शेष होना बताया गया है, इसका कोई स्पष्टीकरण वादी की ओर से पत्रावली पर मौजूद नहीं है। उनका कथन रहा कि जवाबदावा में स्पष्ट रूप से इकरारनामा निष्पादन के तथ्य से इनकारी की गई है एवं इनकारी की

---

[1] ए. आई. आर. 1999 एस. सी. 3318.

[2] ए. आई. आर. 1977 एस. सी. 1091.

जानकारी की स्थिति में वादी विशेषज्ञ के जरिये दस्तावेज निष्पादन के तथ्य को प्रमाणित करवाया जा सकता था, लेकिन ऐसा नहीं किया गया है । इन तर्कों के आधार पर अधीनस्थ न्यायालय का निर्णय तथ्यात्मक एवं विधिक रूप से समुचित होना बताते हुए अपील खारिज किए जाने की प्रार्थना की गई ।

7. समस्त तथ्यों पर विचार किया गया । जहां तक प्रकरण की तथ्यात्मक स्थिति का प्रश्न है, अधीनस्थ न्यायालय में अपीलार्थी-वादी की ओर से वाद बाबत संविदा की विनिर्दिष्ट अनुपालना, निरस्त करने विक्रय पत्र तारीख 8 जून, 1995 एवं स्थायी निषेधाज्ञा का प्रस्तुत कर मूल रूप से अभिवचन किया गया कि वादी ने वादपत्र में अंकित वादग्रस्त भूमि प्रतिवादी संख्या 1 से 80,000/- रुपए में क्रय करते हुए तारीख 5 मई, 1993 को इकरारनामा निष्पादित करवाया, जिस पर प्रतिवादी संख्या 1 व गवाहान ने हस्ताक्षर किए, लेकिन काफी समय व्यतीत हो जाने एवं रजिस्टर्ड दिए जाने के बावजूद प्रतिवादी संख्या 1 ने वादी को विक्रय की गई भूमि को तारीख 8 जून, 1995 को प्रतिवादी संख्या 2 लगायत 5 को विक्रय कर विक्रय पत्र पंजीकृत करा दिया । इन अभिवचनों के आधार पर वादी ने वादपत्र में चाही प्रार्थना अनुसार वादपत्र डिक्री किए जाने की प्रार्थना की ।

8. वादपत्र के खण्डन में प्रतिवादी संख्या 1 की ओर से जवाब दावा प्रस्तुत कर मूल रूप से वादग्रस्त भूमि का बेचान वादी को दिए जाने के कथन से इनकारी की गई एवं इकरारनामा निष्पादन के तथ्य को अस्वीकार कर इकरारनामा फर्जी व बनावटी होना अभिवचित किया । प्रतिवादी संख्या 1 ने अपने अधिकारों के तहत वादग्रस्त भूमि का बेचान प्रतिवादी संख्या 2 लगायत 5 को कर तारीख 8 जून, 1995 को विक्रय पत्र पंजीबद्ध कराया जाना स्वीकार किया एवं वाद वादी खारिज किए जाने की प्रार्थना की गई ।

9. प्रतिवादी संख्या 2 लगायत 5 ने अलग से जवाबदावा प्रस्तुत कर कथन किया कि प्रतिवादी संख्या 1 ने अपने अधिकारों के तहत 1,50,000/- रुपए की राशि प्रतिवादी संख्या 2 लगायत 5 से प्राप्त कर वादग्रस्त भूमि को पंजीकृत विलेख के माध्यम से विक्रय कर दिया । जवाब दाता में यह भी अभिवचन किया गया कि तारीख 8 जून, 1995 से इस वादी को इस तथ्य का ज्ञान था और वादी उस दिन तहसील में ही था । वादी को कोई वादकारण उत्पन्न नहीं होता है । प्रतिवादीगण सद्भाविक क्रेता है । इन अभिवचनों के आधार पर वादपत्र खारिज किए जाने की प्रार्थना की गई ।

10. अधीनस्थ न्यायालय द्वारा पक्षकारान के अभिवचनों के आधार पर कुल 6 विवाद्यक विचरित किए गए हैं । वादी की ओर से अपने पक्ष समर्थन में चार गवाहान को एवं प्रतिवादीगण की ओर से अपने अभिवचनों के समर्थन में पांच गवाहान को प्रस्तुत कर परीक्षित करवाया गया । तत्पश्चात् अधीनस्थ न्यायालय द्वारा दोनों पक्षों की ओर से प्रस्तुत तर्कों एवं पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्य को रोशनी में आक्षेपित निर्णय पारित किया ।

11. अधीनस्थ न्यायालय द्वारा पारित निर्णय एवं इस न्यायालय के समक्ष दोनों पक्षों की ओर से प्रस्तुत तर्कों की रोशनी में इस न्यायालय के समक्ष अपील के निस्तारण हेतु निम्न बिन्दु उत्पन्न होता है ।

> आया अधीनस्थ न्यायालय के समक्ष अपीलार्थी-वादी द्वारा इकरारनामा तारीख 5 मई, 1993 के समर्थन में प्रस्तुत साक्ष्य के आधार पर प्रतिवादी द्वारा इकरारनामा निष्पादन किए जाने के तथ्य को प्रमाणित नहीं मानकर वाद खारिज कर त्रुटि कारित की गई है ?

12. इस न्यायालय की राय में अपीलीय न्यायालय अपील का निस्तारण करते हुए प्रकरण में उपलब्ध साक्ष्य की रोशनी में अधीनस्थ न्यायालय द्वारा पत्रावली पर उपलब्ध जिस साक्ष्य का विवेचन कर निष्कर्ष दिया गया है, उसके अतिरिक्त पत्रावली पर अन्य सुसंगत साक्ष्य उपलब्ध होने पर, उक्त साक्ष्य को मद्देनजर रखते हुए विवेचन कर निष्कर्ष प्रदान किया जा सकता है । ऐसी स्थिति में अधीनस्थ न्यायालय द्वारा जिस साक्ष्य का अवलंबन लिया गया है, उसके अतिरिक्त वादी की ओर से प्रस्तुत साक्ष्य का तुलनात्मक अध्ययन कर, विवाद्यकों की रोशनी में एवं अनावश्यक रूप से पक्षों के मध्य मुकदमेबाजी को रोकने के उद्देश्य से उपरोक्त बिन्दु के तहत अपील का निस्तारण निम्न प्रकार किया जा रहा है ।

13. इस न्यायालय के मतानुसार विवाद्यक संख्या 1 व 4 के क्रम में अधीनस्थ न्यायालय द्वारा जो निष्कर्ष दिया गया है, उसी की रोशनी में मूल रूप से तय किया जाना है कि दस्तावेज इकरारनामा के निष्पादन के क्रम में अधीनस्थ न्यायालय द्वारा दिया गया निष्कर्ष न्यायोचित है या नहीं । इस क्रम में अधीनस्थ न्यायालय के निर्णय के अवलोकन से प्रकट होता है कि अधीनस्थ न्यायालय ने विवाद्यक संख्या 1 व 4 के क्रम में भी वादी की ओर से पी.ड. 1 से पी.ड. 4 की साक्ष्य के साथ-साथ मूल रूप से प्रतिवादी की ओर से प्रस्तुत गवाह डी.ड. 5 अनिल कुमार हस्तलेख विशेषज्ञ की

साक्ष्य को मद्देनजर रखते हुए प्रदर्श 3 इकरारनामा पर प्रतिवादी के हस्ताक्षर होने का तथ्य प्रमाणित नहीं मानते हुए इकरारनामा के निष्पादन से इनकारी कर वादी का वाद खारिज किया है ।

14. योग्य अधिवक्ता अपीलार्थी-वादी की ओर से न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत न्याय दृष्टांतों में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि संबंधित विशेषज्ञ को पर्याप्त जानकारी एवं कुशलता होना आवश्यक है, अन्यथा ऐसी साक्ष्य को नजरअंदाज किया जा सकता है । हम प्रस्तुत न्याय दृष्टांतों में प्रतिपादित सिद्धांतों से ससम्मान सहमत है ।

15. दीवानी प्रकृति के वाद/प्रकरण में मूल रूप से वादी को अपने पैरों पर खड़ा होकर दस्तावेज इकरारनामा प्रदर्श 3 के निष्पादन के तथ्य को प्रमाणित करना आवश्यक है । प्रतिवादी की ओर से प्रस्तुत जवाबदावे में इकरारनामा प्रदर्श 3 के निष्पादन एवं उस पर हस्ताक्षर होने के तथ्य से इनकारी किए जाने की जानकारी के बावजूद वादी की ओर से स्वीकृत रूप से मात्र दस्तावेज से संबंधित गवाहान को परीक्षित करवाने के अलावा विशेषज्ञ की साक्ष्य के माध्यम से दस्तावेज को प्रमाणित नहीं करवाया गया है, बल्कि इसके विपरीत प्रतिवादी की ओर से डी.ड. अनिल कुमार हस्तलेख विशेषज्ञ को परीक्षित करवाया गया है । एक क्षण के लिए उक्त हस्तलेख विशेषज्ञ की साक्ष्य को नज़रअंदाज कर, वादी के दायित्व की रोशनी में पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्य के अनुरूप प्रकरण का अवलोकन करने पर प्रकट होता है कि वादी द्वारा इकरारनामा प्रदर्श 3 को प्रमाणित करवाने के लिए पर्याप्त व संतोषप्रद साक्ष्य पत्रावली पर प्रस्तुत नहीं की गई है । वादी मूलचंद पी.ड.1 अधीनस्थ न्यायालय में परीक्षित हुआ है तथा दस्तावेज प्रदर्श 3 इकरारनामा के आधार पर दावे को डिक्री किए जाने की प्रार्थना की गई है । दस्तावेज प्रदर्श 3 इकरारनामा के अवलोकन से प्रकट होता है कि उक्त दस्तावेज की पुश्त पर अंकित इबारत अनुसार तारीख 28 अप्रैल, 1993 को स्टाम्प खरीदा गया है तथा स्टाम्प मात्र शपथपत्र के लिए खरीद किया जाना अंकित किया गया है । उक्त दस्तावेज पर प्रतिवादी के खरीददार के रूप में हस्ताक्षर नहीं है । एवं दूसरी ओर तारीख 28 अप्रैल, 1993 के दस्तावेज पर दिनांक 5 मई, 1993 को उपयोग में लिया गया है । इस क्रम में वादी मूलचंद की जिरह में निम्न तथ्य प्रकट किए गए हैं ।

> .... एग्रीमेंट का स्टाम्प चौथमल ही लेकर आया था उसे यह पता नहीं कि यह स्टाम्प किससे खरीदकर लाया था? प्रतिवादी चौथमल से स्टाम्प नहीं मंगवाया वह स्वयं ही लेकर

आया था । स्टाम्प लाने के लिए पैसे उसने नहीं दिए । मुझे यह पता नहीं कि स्टाम्प वाले से यह स्टाम्प कौनसी तारीख को खरीदा ।

16. इस न्यायालय की राय में जहां प्रतिवादी की ओर से स्टाम्प के दस्तावेज के निष्पादन से इनकारी की गई है एवं जिसकी जानकारी वादी को जवाबदावा प्रस्तुति के दिन, विवाद्यक बनाने के समय ही हो चुकी हो, वहां वादी का यह कर्तव्य था कि वह एग्रीमेंट प्रदर्श 3 को संतोषप्रद साक्ष्य प्रस्तुत कर संदेह से परे प्रमाणित करे । वादी द्वारा अपनी साक्ष्य से स्टाम्प कौनसी तारीख को खरीदा गया है, किस व्यक्ति के द्वारा खरीदा गया है, इस तथ्य की जानकारी से भी इनकारी की है तथा वादी द्वारा दस्तावेज को संदेह से परे साबित करने के उद्देश्य से स्टाम्प वेण्डर को भी परीक्षित नहीं कराया गया है तथा न ही स्टाम्प वेण्डर से संबंधित रजिस्टर को प्रस्तुत कर प्रतिवादी के हस्ताक्षर प्रमाणित करवाए गए हैं, जिससे प्रकट हो सके कि प्रतिवादी द्वारा वादग्रस्त जमीन को विक्रय करने के उद्देश्य से संबंधित स्टाम्प वेण्डर से स्टाम्प खरीदा गया हो । इसके अतिरिक्त स्टाम्प खरीदने की तारीख से स्टाम्प के निष्पादन की तारीख के मध्य के समय अंतराल बाबत भी कोई स्पष्ट हवाला प्रकट नहीं किया गया है ।

17. जहां तक स्टाम्प निष्पादन के स्थान का प्रश्न है, वादी ने अपनी जिरह में स्पष्ट रूप से प्रकट किया कि उसके दुपल्ले के आगे नीम के चबूतरे पर लिखा गया था । जबकि गवाह पी.ड. रामधन ने स्टाम्प सांवलाराम द्वारा लिखा जाना और चौथमल प्रतिवादी के हस्ताक्षर अपने सामने करता तो बताया है, लेकिन जिरह में गवाह ने बताया है कि प्रदर्श 3 मूलचंद के घर पर लिखा गया था ।

18. उपरोक्त दोनों गवाहान के बयानों में स्थिति स्पष्ट है कि स्टाम्प का निष्पादन जिस स्थान पर होना वादी द्वारा बताया गया है, उसकी पुष्टि स्वयं वादी के गवाह द्वारा नहीं की गई है । इस न्यायालय की राय में विवाद्यक संख्या 1 व 4 के क्रम में कुछ हद तक निःसंदेह अधीनस्थ न्यायालय द्वारा डी.ड. 5 अनिल कुमार की साक्ष्य पर आधारित होकर निष्कर्ष दिया गया है, लेकिन डी.ड. 5 अनिल कुमार की साक्ष्य के क्रम में हुए विस्तृत प्रतिपरीक्षण और उसके निष्कर्ष की विश्वसनीयता के अनुरूप अधीनस्थ न्यायालय द्वारा निर्णय पारित किया गया है । उसी क्रम में वाद को प्रमाणित करने हेतु वादी की साक्ष्य को अवलोकन किए जाने पर प्रकट होता है कि वादी द्वारा न तो स्टाम्प को तारीख 28 अप्रैल, 1993 को

खरीदने के पश्चात् तारीख 5 मई, 1993 के पूर्व तक निष्पादन नहीं करने का कारण, विक्रय पत्र की सम्पूर्ण राशि का भुगतान किए जाने के बावजूद भी विक्रय पत्र का सब-रजिस्ट्रार के समक्ष पंजीकरण नहीं करवाने, प्रतिवादी द्वारा इकरारनामा के निष्पादन से इनकारी करने पर वादी के स्तर पर विशेषज्ञ से जांच नहीं करवाये जाने एवं विशेषज्ञ को गवाह के तौर पर अधीनस्थ न्यायालय में प्रस्तुत नहीं किए जाने के परिणामस्वरूप अधीनस्थ न्यायालय द्वारा विवाद्यक संख्या 1 व 4 के क्रम में दिया गया निष्कर्ष पूर्णतः न्यायोचित है ।

19. जहां तक अन्य विवाद्यकों पर अधीनस्थ न्यायालय के निष्कर्ष का प्रश्न है, विवाद्यक संख्या 2 व 3 के क्रम में यह स्वीकृत स्थिति है कि प्रतिवादी संख्या 2 लगायत 5 के पक्ष में विक्रय पत्र निष्पादित हो चुका है एवं उसी विक्रय पत्र को निरस्त किए जाने एवं संविदा की विर्निदिष्ट अनुपालना के क्रम में वादी की ओर से प्रार्थना की गई है । ऐसी स्थिति में प्रतिवादी संख्या 2 लगायत 5 के पक्ष में विक्रय पत्र का निष्पादन होना अधीनस्थ न्यायालय द्वारा प्रमाणित माना गया है, जिसमें भी किसी प्रकार की त्रुटि नहीं है ।

20. उपरोक्तनुसार विवेचन की रोशनी में अधीनस्थ न्यायालय द्वारा पारित निर्णय, प्रकरण में उपलब्ध तथ्यात्मक स्थिति एवं साक्ष्य के आधार पर न्यायसंगत होने में उसमें किसी प्रकार के हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है । अतः प्रस्तुत अपील खारिज किए जाने योग्य है ।

21. परिणामतः अपीलार्थी-वादी की ओर से प्रस्तुत यह सिविल प्रथम अपील खारिज की जाती है ।

अपील खारिज की गई ।

मही./अवि.

संसद् के अधिनियम

हिन्दू दत्तक तथा भरण-पोषण अधिनियम, 1956

(1956 का अधिनियम संख्यांक 78)[1]

[21 दिसम्बर, 1956]

हिन्दुओं में दत्तक तथा भरण-पोषण से संबंधित विधि को संशोधित और संहिताबद्ध करने के लिए

अधिनियम

भारत गणराज्य के सातवें वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप से यह अधिनियमित हो :–

अध्याय 1

प्रारम्भिक

1. संक्षिप्त नाम और विस्तार – (1) यह अधिनियम हिन्दू दत्तक तथा भरण-पोषण अधिनियम, 1956 कहा जा सकेगा ।

(2) इसका विस्तार जम्मू-कश्मीर राज्य के सिवाय सम्पूर्ण भारत पर है ।

2. अधिनियम का लागू होना – (1) यह अधिनियम लागू है –

---

[1] इस अधिनियम का विस्तार दादरा और नागर हवेली पर 1963 के विनियम सं. 6 की धारा 2 और पहली अनुसूची द्वारा किया गया है ।

यह अधिनियम 1976 के उत्तर प्रदेश अधिनियम सं. 57 द्वारा उत्तर प्रदेश में संशोधित किया गया ।

यह अधिनियम, प्रशासक द्वारा अधिसूचित तारीख से, निम्नलिखित उपान्तरणों के साथ, पुडुचेरी में प्रवृत्त होगा ;

धारा 2 में, उपधारा (2) के पश्चात् निम्नलिखित अंत:स्थापित करें :–

"(2क) उपधारा (1) में किसी बात के होते हुए भी इस अधिनियम में अंतर्विष्ट कोई बात पुडुचेरी संघ राज्यक्षेत्र के रेनोंसों को लागू नहीं होगी ।" ।

देखिए पुडुचेरी (विधि विस्तारण) अधिनियम, 1968 (1968 का 26) की धारा 3 और अनुसूची ।

(क) ऐसे किसी भी व्यक्ति को जो हिन्दू धर्म के किसी भी रूप या विकास के अनुसार, जिसके अन्तर्गत वीरशैव, लिंगायत अथवा ब्रह्म समाज, प्रार्थनासमाज या आर्यसमाज के अनुयायी भी आते हैं, धर्मत: हिन्दू हो ;

(ख) ऐसे किसी भी व्यक्ति को जो धर्मत: बौद्ध, जैन या सिक्ख हो ; तथा

(ग) ऐसे किसी भी अन्य व्यक्ति को जो धर्मत: मुस्लिम, क्रिश्चियन, पारसी या यहूदी न हो, जब तक कि यह साबित न कर दिया जाए कि यदि यह अधिनियम पारित न किया गया होता तो कोई भी ऐसा व्यक्ति एतस्मिन् उपबन्धित किसी भी बात के बारे में हिन्दू विधि या उस विधि के भाग-रूप किसी रूढ़ि या प्रथा द्वारा शासित न होता ।

स्पष्टीकरण – निम्नलिखित व्यक्ति धर्मत:, यथास्थिति, हिन्दू, बौद्ध, जैन या सिक्ख हैं :–

(क) कोई भी अपत्य, धर्मज या अधर्मज, जिसके माता-पिता, दोनों ही धर्मत: हिन्दू, बौद्ध, जैन या सिक्ख हों ;

(ख) कोई भी अपत्य, धर्मज या अधर्मज, जिसके माता-पिता में से कोई एक धर्मत: हिन्दू, बौद्ध, जैन या सिक्ख हो और जो उस जनजाति, समुदाय, समूह या कुटुम्ब के सदस्य के रूप में पला हो जिसका वह माता या पिता सदस्य है या था ; [1]* * *

[2][(खख) कोई भी अपत्य, धर्मज या अधर्मज, जो अपने पिता और माता दोनों द्वारा परित्यक्त कर दिया गया हो अथवा जिसकी जनकता ज्ञात न हो, और जो दोनों में से किसी भी दशा में हिन्दू, बौद्ध, जैन या सिक्ख के रूप में पला हो ; तथा]

(ग) ऐसा कोई भी व्यक्ति जो हिन्दू, जैन या सिक्ख धर्म में संपरिवर्तित या प्रतिसंपरिवर्तित हो गया हो ।

(2) उपधारा (1) में अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, इस अधिनियम में अन्तर्विष्ट कोई भी बात किसी ऐसी जनजाति के सदस्यों को,

---

[1] 1962 के अधिनियम सं. 45 की धारा 2 द्वारा "और" शब्द का लोप किया गया ।

[2] 1962 के अधिनियम सं. 45 की धारा 2 द्वारा अंत:स्थापित ।

जो संविधान के अनुच्छेद 366 के खंड (25) के अर्थ के अन्तर्गत अनुसूचित जनजाति हो, लागू न होगी जब तक कि केन्द्रीय सरकार शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा अन्यथा निर्दिष्ट न कर दे ।

(3) इस अधिनियम के किसी भी प्रभाग में आए हुए "हिन्दू" पद का अर्थ ऐसा लगाया जाएगा मानो उसके अन्तर्गत ऐसा व्यक्ति आता हो जो यद्यपि धर्मत: हिन्दू नहीं है तथापि, ऐसा व्यक्ति है जिसे यह अधिनियम इस धारा में अन्तर्विष्ट उपबन्धों के आधार पर लागू होता है ।

3. परिभाषाएं – इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, –

(क) "रूढ़ि" और "प्रथा" पद ऐसे किसी भी नियम का संज्ञान कराते हैं जिसने दीर्घकाल तक निरन्तर और एकरूपता से अनुपालित किए जाने के कारण किसी स्थानीय क्षेत्र, आदिम-जनजाति समुदाय, समूह या कुटुम्ब के हिन्दुओं में विधि का बल अभिप्राप्त कर लिया हो :

परंतु यह तब जब कि वह नियम निश्चित हो, और अयुक्तियुक्त या लोकनीति के विरुद्ध न हो ; तथा

परन्तु यह और भी कि ऐसे नियम की दशा में जो एक कुटुम्ब को ही लागू हो, उसकी निरन्तरता उस कुटुम्ब द्वारा बन्द न कर दी गई हो ;

(ख) "भरण-पोषण" के अन्तर्गत –

(i) सब दशाओं में भोजन, वस्त्र, आवास, शिक्षा और चिकित्सीय परिचर्या और इलाज के लिए उपबन्ध आता है ;

(ii) अविवाहिता पुत्री की दशा में उसके विवाह के युक्तियुक्त और प्रासंगिक व्यय भी आते हैं ;

(ग) "अप्राप्तवय" से वह व्यक्ति अभिप्रेत है जिसने अपनी अठारह वर्ष की आयु पूरी न की हो ।

4. अधिनियम का अध्यारोही प्रभाव – इस अधिनियम में अभिव्यक्त रूप से अन्यथा उपबन्धित के सिवाय, –

(क) हिन्दू विधि का कोई ऐसा शास्त्र-वाक्य, नियम या निर्वचन या उस विधि की भाग-रूप कोई भी रूढ़ि या प्रथा, जो कि इस अधिनियम के प्रारंभ होने से अव्यवहित पूर्व प्रवृत्त रही हो, ऐसे किसी भी विषय के बारे में जिसके लिए कि इस अधिनियम में उपबन्ध किया गया है, प्रभावहीन हो

जाएगी ;

(ख) इस अधिनियम के प्रारंभ से अव्यवहित पूर्व प्रवृत्त किसी भी अन्य विधि का हिन्दुओं को लागू होना वहां तक बन्द हो जाएगा जहां तक कि वह इस अधिनियम में अन्तर्विष्ट उपबंधों में से किसी से भी असंगत हो ।

अध्याय 2

दत्तक

5. दत्तक इस अध्याय द्वारा विनियमित होंगे – (1) किसी हिन्दू के द्वारा या निमित्त कोई भी दत्तक इस अधिनियम के प्रारम्भ के पश्चात् इस अध्याय में अन्तर्विष्ट उपबंधों के अनुसार किए जाने के सिवाय नहीं किया जाएगा और उक्त उपबंधों के उल्लंघन में किया गया कोई भी दत्तक शून्य होगा ।

(2) किसी ऐसे दत्तक से, जो शून्य है, न तो दत्तक कुटुम्ब में किसी भी व्यक्ति के पक्ष में किसी ऐसे अधिकार का सृजन होगा जिसे वह दत्तक के कारण अर्जित करने के सिवाय अर्जित नहीं कर सकता था और न किसी भी व्यक्ति के वे अधिकार ही नष्ट होंगे जो उसे अपने जन्म के कुटुम्ब में प्राप्त हैं ।

6. विधिमान्य दत्तक संबंधी अपेक्षाएं – कोई भी दत्तक विधिमान्य नहीं होगा जब तक कि –

(i) दत्तक लेने वाला व्यक्ति दत्तक लेने की सामर्थ्य और अधिकार न रखता हो ;

(ii) दत्तक देने वाला व्यक्ति ऐसा करने की सामर्थ्य न रखता हो ;

(iii) दत्तक व्यक्ति दत्तक में लिए जाने योग्य न हो ; और

(iv) दत्तक इस अध्याय में वर्णित अन्य शर्तों के अनुवर्तन में न किया गया हो ।

7. हिन्दू पुरुष की दत्तक लेने की सामर्थ्य – किसी भी हिन्दू पुरुष को जो स्वस्थ चित्त हो और अप्राप्तवय न हो यह सामर्थ्य होगी कि वह पुत्र या पुत्री दत्तक ले :

परन्तु यदि उसकी पत्नी जीवित हो तो जब तक कि पत्नी पूर्ण और अन्तिम रूप से संसार का त्याग न कर चुकी हो या वह हिन्दू न रह गई हो

या सक्षम अधिकारिता वाले किसी न्यायालय ने उसके बारे में यह घोषित न कर दिया हो कि वह विकृतचित्त की है तब तक वह अपनी पत्नी की सम्मति के बिना दत्तक नहीं लेगा ।

स्पष्टीकरण – यदि किसी व्यक्ति की एक से अधिक पत्नियां दत्तक के समय जीवित हों तो जब तक कि पूर्ववर्ती परन्तुक में विनिर्दिष्ट कारणों में से किसी के लिए उनमें से किसी की सम्मति अनावश्यक न हो, सब पत्नियों की सम्मति आवश्यक होगी ।

8. हिन्दू नारी की दत्तक लेने की सामर्थ्य – कोई भी हिन्दू नारी जो –

(क) स्वस्थ चित्त है,

(ख) अप्राप्तवय नहीं है, और

(ग) विवाहिता नहीं है या यदि विवाहिता है तो उसका विवाह विघटित कर दिया गया है या जिसका पति मर चुका है या पूर्ण और अंतिम रूप से संसार का त्याग कर चुका है या हिन्दू नहीं रह गया है या सक्षम अधिकारिता वाले किसी न्यायालय ने उसके बारे में यह घोषित कर दिया है कि वह विकृतचित्त का है,

वह पुत्र या पुत्री को दत्तक लेने की सामर्थ्य रखती है ।

9. दत्तक देने के लिए सक्षम व्यक्ति – (1) अपत्य के पिता या माता या संरक्षक के सिवाय कोई व्यक्ति अपत्य को दत्तक देने की सामर्थ्य नहीं रखेगा ।

(2) यदि पिता जीवित हो तो [1][उपधारा (3) और उपधारा (4)] के उपबंधों के अध्यधीन यह है कि केवल उसे ही दत्तक देने का अधिकार होगा किन्तु जब तक कि माता पूर्ण और अंतिम रूप से संसार का त्याग न कर चुकी हो या वह हिन्दू न रह गई हो या सक्षम अधिकारिता वाले किसी न्यायालय ने उसके बारे में यह घोषित न कर दिया हो कि वह विकृतचित्त की है ऐसा अधिकार माता की सम्मति के बिना प्रयोग में नहीं लाया जाएगा ।

(3) यदि पिता मर चुका हो या पूर्ण और अंतिम रूप से संसार का त्याग कर चुका हो या हिन्दू न रह गया हो या सक्षम अधिकारिता वाले किसी न्यायालय ने उसके बारे में यह घोषित कर दिया हो कि वह विकृत-

---

[1] 1962 के अधिनियम सं. 45 की धारा 3 द्वारा "उपधारा (3)" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

चित्त का है तो माता अपत्य को दत्तक दे सकेगी ।

[1][(4) जहां माता और पिता दोनों मर चुके हों या पूर्ण और अंतिम रूप से संसार का त्याग कर चुके हों या अपत्य को त्याग चुके हों या सक्षम अधिकारिता वाले किसी न्यायालय ने उनके बारे में यह घोषित कर दिया हो कि वे विकृतचित्त के हैं या जहां कि अपत्य की जनकता ज्ञात न हो, तो उस अपत्य का संरक्षक न्यायालय की पूर्ण अनुज्ञा से उस अपत्य को किसी भी व्यक्ति को जिसके अन्तर्गत स्वयं वह संरक्षक भी आता है दत्तक दे सकेगा ।]

(5) न्यायालय किसी संरक्षक को उपधारा (4) के अधीन अनुज्ञा देने के पूर्व इस बात को ध्यान में रखकर कि अपत्य की आयु और समझने की शक्ति कितनी है दत्तक दिए जाने के संबंध में अपत्य की इच्छा पर सम्यक् विचार करके अपना इस बारे में समाधान कर लेगा कि दत्तक दिया जाना अपत्य के लिए कल्याणकर होगा या नहीं और यह कि दत्तक देने के प्रतिफलस्वरूप कोई संदाय या इनाम ऐसे किसी संदाय या इनाम के सिवाय, जैसा कि न्यायालय मंजूर करे, अनुज्ञा के लिए आवेदन करने वाले ने न तो प्राप्त किया है और न प्राप्त करने का करार किया है और न किसी भी व्यक्ति ने आवेदन करने वाले को किया या दिया है और न ही करने या देने के लिए करार उससे किया है ।

स्पष्टीकरण – इस धारा के प्रयोजनों के लिए –

(i) "माता" और "पिता" पदों के अन्तर्गत दत्तक माता और दत्तक पिता नहीं आते हैं ;[2]* * *

[3][(iक) "संरक्षक" से वह व्यक्ति अभिप्रेत है जिसकी देखरेख में किसी अपत्य का शरीर या उसका शरीर और सम्पत्ति दोनों हों और इसके अन्तर्गत आते हैं –

(क) अपत्य के पिता या माता की विल द्वारा नियुक्त संरक्षक ; तथा

(ख) किसी न्यायालय द्वारा नियुक्त या घोषित संरक्षक ;

---

[1] 1962 के अधिनियम सं. 45 की धारा 3 द्वारा "उपधारा (4)" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[2] 1962 के अधिनियम सं. 45 की धारा 3 द्वारा "और" शब्द का लोप किया गया ।

[3] 1962 के अधिनियम सं. 45 की धारा 3 द्वारा अंत:स्थापित ।

तथा]

(ii) "न्यायालय" से ऐसा नगर सिविल न्यायालय या जिला न्यायालय अभिप्रेत है जिसकी अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं के अन्दर दत्तक लिया जाने वाला अपत्य मामूली तौर पर निवास करता है ।

10. व्यक्ति जो दत्तक लिए जा सकते हैं – कोई भी व्यक्ति दत्तक लिए जाने के योग्य न होगा जब तक कि निम्नलिखित शर्तें पूरी न हों, अर्थात् –

(i) वह हिन्दू है ;

(ii) वह पहले ही से दत्तक नहीं लिया जा चुका है, या ली जा चुकी है ;

(iii) उसका विवाह नहीं हुआ है, तब के सिवाय जब कि पक्षकारों को लागू होने वाली कोई ऐसी रूढ़ि या प्रथा हो जो विवाहित व्यक्तियों का दत्तक लिया जाना अनुज्ञात करती हो ;

(iv) उसने पन्द्रह वर्ष की आयु पूरी नहीं की है तब के सिवाय जब कि पक्षकारों को लागू होने वाली कोई ऐसी रूढ़ि या प्रथा हो जो ऐसे व्यक्तियों का, जिन्होंने पन्द्रह वर्ष की आयु पूरी कर ली हो, दत्तक लिया जाना अनुज्ञात करती हो ।

11. विधिमान्य दत्तक की अन्य शर्तें – हर दत्तक में निम्नलिखित शर्तें पूरी की जानी होंगी :–

(i) यदि पुत्र का दत्तक है तो दत्तक लेने वाले पिता या माता, जिनके द्वारा दत्तक लिया जाए, कोई हिन्दू पुत्र, पुत्र का पुत्र या पुत्र के पुत्र का पुत्र (चाहे धर्मज-रक्त नातेदारी से हो या दत्तक से) दत्तक के समय जीवित न हो ;

(ii) यदि पुत्री का दत्तक है तो दत्तक लेने वाले पिता या माता की, जिनके द्वारा दत्तक लिया जाए, कोई हिन्दू पुत्री या पुत्र की पुत्री (चाहे धर्मज-रक्त नातेदारी से हो या दत्तक से) दत्तक के समय जीवित न हो ;

(iii) यदि दत्तक किसी पुरुष द्वारा लिया जाना है और दत्तक में लिया जाने वाला व्यक्ति नारी है तो दत्तक पिता दत्तक लिए जाने वाले व्यक्ति से आयु में कम से कम इक्कीस वर्ष बड़ा हो ;

(iv) यदि दत्तक किसी नारी द्वारा लिया जाना है और दत्तक लिया जाने वाला व्यक्ति पुरुष है तो दत्तक माता दत्तक लिए जाने वाले व्यक्ति से आयु में कम से कम इक्कीस वर्ष बड़ी हो ;

(v) वही अपत्य एक साथ दो या दो से अधिक व्यक्तियों द्वारा दत्तक नहीं लिया जा सकेगा ;

(vi) दत्तक लिया जाने वाला अपत्य सम्पृक्त जनकों या संरक्षक द्वारा या उसके प्राधिकार के अधीन उस अपत्य के कुटुम्ब से जहां वह जन्मा हो [1][अथवा परित्यक्त अपत्य की दशा में या ऐसे अपत्य की दशा में जिसकी जनकता ज्ञात न हो, उस स्थान या कुटुम्ब से जहां वह पला हो,] उसका दत्तक लेने वाले कुटुम्ब में उसे अन्तरित करने के आशय से वस्तुत: दिया और लिया जाएगा :

परन्तु दत्त होमम् का किया जाना किसी दत्तक की विधिमान्यता के लिए आवश्यक नहीं होगा ।

12. दत्तक के परिणाम – दत्तक अपत्य की तारीख से अपने दत्तक पिता या माता का अपत्य समस्त प्रयोजनों के लिए समझा जाएगा और ऐसी तारीख से यह समझा जाएगा कि उस अपत्य के अपने जन्म के कुटुम्ब के साथ समस्त बन्धन टूट गए हैं और उनका स्थान उन बन्धनों ने ले लिया है जो दत्तक कुटुम्ब में दत्तक के कारण सृजित हुए हों :

परन्तु –

(क) वह अपत्य किसी ऐसे व्यक्ति से विवाह नहीं कर सकेगा जिससे कि यदि वह अपने जन्म के कुटुम्ब में ही बना रहा होता तो वह विवाह न कर सकता था ;

(ख) कोई भी सम्पत्ति जो दत्तक अपत्य में दत्तक के पूर्व निहित थी, ऐसी सम्पत्ति के स्वामित्व से संलग्न बाध्यताओं के, यदि कोई हों, अध्यधीन, जिनके अन्तर्गत उसके जन्म के कुटुम्ब में के, नातेदारों का भरण-पोषण करने की बाध्यता भी आती है, ऐसे व्यक्ति में निहित बनी रहेगी ;

(ग) दत्तक अपत्य किसी व्यक्ति को उस सम्पदा से निर्निहित नहीं करेगा जो उस व्यक्ति में दत्तक के पूर्व निहित हो गई है ।

---

[1] 1962 के अधिनियम सं. 45 की धारा 4 द्वारा अंत:स्थापित ।

13. दत्तक जनकों का अपनी सम्पत्तियों के व्ययन का अधिकार – तत्प्रतिकूल करार के अध्यधीन यह है कि कोई दत्तक किसी दत्तक पिता या माता को अपनी सम्पत्ति जीवाभ्यन्तर अन्तरण द्वारा या विल द्वारा व्ययित करने की शक्ति से वंचित नहीं करता ।

14. कुछ दशाओं में दत्तक माता का अवधारण – (1) जहां कोई हिन्दू, जिसकी पत्नी जीवित है, किसी अपत्य को दत्तक लेता है वहां वह दत्तक माता समझी जाएगी ।

(2) जहां दत्तक एक से अधिक पत्नियों की सम्मति से किया गया है वहां उनमें से सबसे पूर्व विवाहिता दत्तक माता समझी जाएगी और अन्य सौतेली माताएं समझी जाएगी ।

(3) जहां कोई विधुर या कुंवारा किसी अपत्य को दत्तक लेता है वहां ऐसी कोई पत्नी, जिससे वह तत्पश्चात् विवाह करे, दत्तक अपत्य की सौतेली माता समझी जाएगी ।

(4) जहां कोई विधवा या अविवाहित नारी किसी अपत्य को दत्तक लेती है वहां कोई पति, जिससे वह तत्पश्चात् विवाह करे, दत्तक अपत्य का सौतेला पिता समझा जाएगा ।

15. विधिमान्य दत्तक रद्द न किया जाएगा – कोई भी दत्तक जो विधिमान्यतः किया गया है, दत्तक पिता या माता द्वारा या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा रद्द न किया जा सकेगा और न दत्तक अपत्य अपनी ऐसी हैसियत का त्याग कर सकेगा और न वह अपने जन्म के कुटुम्ब में वापस जा सकेगा ।

16. दत्तक से संबंधित रजिस्ट्रीकृत दस्तावेजों के बारे में उपधारणा – जब कभी भी तत्समय प्रवृत्त विधि के अधीन रजिस्ट्रीकृत कोई ऐसी दस्तावेज जिसमें किसी किए गए दत्तक का अभिलिखित होना तात्पर्यित हो और जो अपत्य को दत्तक देने और लेने वाले व्यक्तियों द्वारा हस्ताक्षरित हो, किसी न्यायालय के समक्ष पेश किया जाए तब जब तक कि और यदि उसे नासाबित न कर दिया जाए वह न्यायालय यह उपधारणा करेगा कि वह दत्तक इस अधिनियम के उपबंधों के अनुपालन में किया गया है ।

17. कुछ संदायों का प्रतिषेध – (1) किसी व्यक्ति के दत्तक के प्रतिफलस्वरूप कोई भी व्यक्ति कोई संदाय या अन्य इनाम न तो प्राप्त करेगा और न प्राप्त करने के लिए, करार करेगा और न ही कोई भी व्यक्ति

किसी अन्य व्यक्ति को कोई ऐसा संदाय करेगा या इनाम देगा या करने या देने के लिए करार करेगा जिसका प्राप्त करना इस धारा द्वारा प्रतिषिद्ध है ।

(2) यदि कोई व्यक्ति उपधारा (1) के उपबन्धों का उल्लंघन करेगा तो वह ऐसे कारावास से, जो छह मास तक का हो सकेगा, या जुर्माने से, या दोनों से, दंडनीय होगा ।

(3) इस धारा के अधीन कोई भी अभियोजन राज्य सरकार की या राज्य सरकार द्वारा तन्निमित्त प्राधिकृत किसी आफिसर की पूर्व मंजूरी के बिना संस्थित नहीं किया जाएगा ।

अध्याय 3

भरण-पोषण

18. पत्नी का भरण-पोषण – (1) इस धारा के उपबन्धों के अध्यधीन यह है कि हिन्दू पत्नी, चाहे वह इस अधिनियम के प्रारम्भ के पूर्व या पश्चात् विवाहित हो अपने जीवनकाल में अपने पति से भरण-पोषण पाने की हकदार होगी ।

(2) हिन्दू पत्नी अपने भरण-पोषण के दावे को समपहृत किए बिना अपने पति से पृथक् रहने के लिए निम्नलिखित किसी भी दशा में हकदार होगी :–

(क) यदि उसका पति अभित्यजन, अर्थात् युक्तियुक्त कारण के बिना और उसकी सम्मति के बिना या उसकी इच्छा के विरुद्ध उसका परित्याग करने का या जानबूझकर उसकी उपेक्षा करने का दोषी है ;

(ख) यदि उसका पति उसके साथ ऐसी क्रूरता का व्यवहार करे जिससे उसके अपने मन में इस बात की युक्तियुक्त आशंका पैदा हो कि उसके पति के साथ रहना अपहानिकर या क्षतिकारक होगा ;

(ग) यदि उसका पति उग्र कुष्ट से पीड़ित है ;

(घ) यदि उसके पति की कोई अन्य पत्नी जीवित है ;

(ङ) यदि उसका पति उसी गृह में जिसमें उसकी पत्नी निवास करती है कोई उपपत्नी रखता है या किसी उपपत्नी के साथ अन्य किसी स्थान में अभ्यासतः निवास करता है ;

(च) यदि उसका पति कोई अन्य धर्म में संपरिवर्तित होने के कारण हिन्दू नहीं रह गया है ; और

(छ) यदि उसके पृथक् होकर रहने का कोई अन्य न्यायोचित कारण है ।

(3) यदि कोई हिन्दू पत्नी असती है या किसी अन्य धर्म में संपरिवर्तित होने के कारण हिन्दू नहीं रह गई है तो वह अपने पति से पृथक् निवास करने और भरण-पोषण प्राप्त करने की हकदार नहीं होगी ।

19. विधवा पुत्रवधु का भरण-पोषण – (1) कोई हिन्दू पत्नी, चाहे वह इस अधिनियम के प्रारम्भ से पूर्व या पश्चात् विवाहित हो, अपने पति की मृत्यु के पश्चात् अपने श्वसुर से भरण-पोषण प्राप्त करने की हकदार होगी :

परन्तु यह तब जब कि और उस विस्तार तक जहां तक कि वह स्वयं अपने अर्जन से या अन्य सम्पत्ति से अपना भरण-पोषण करने में असमर्थ हो या उस दशा में जहां उसके पास अपनी स्वयं की कोई भी सम्पत्ति नहीं है, वह निम्नलिखित में किसी से अपना भरण-पोषण अभिप्राप्त करने में असमर्थ हो :–

(क) अपने पति या अपने पिता या माता की सम्पदा से, या

(ख) अपने पुत्र या पुत्री से यदि कोई हो, या उसकी सम्पदा से ।

(2) यदि श्वसुर के अपने कब्जे में की ऐसी सहदायिकी सम्पति से, जिसमें से पुत्रवधु को कोई अंश अभी प्राप्त नहीं हुआ है श्वसुर के लिए ऐसा करना साध्य नहीं है, तो उपधारा (1) के अधीन किसी बाध्यता का प्रवर्तन नहीं कराया जा सकेगा और ऐसी बाध्यता का पुत्रवधु के पुनर्विवाह पर अंत हो जाएगा ।

20. अपत्यों और वृद्ध जनकों का भरण-पोषण – (1) इस धारा के उपबंधों के अध्यधीन रहते हुए यह कि कोई हिन्दू अपने जीवन काल के दौरान अपने धर्मज या अधर्मज अपत्यों और वृद्ध या शिथिलांग जनकों का भरण-पोषण करने के लिए आबद्ध है ।

(2) जब तक कि कोई धर्मज या अधर्मज अपत्य अप्राप्तवय रहे वह अपने पिता या माता से भरण-पोषण पाने के लिए दावा कर सकेगा ।

(3) किसी व्यक्ति को अपने वृद्ध या शिथिलांग जनकों का या किसी पुत्री का, जो अविवाहिता हो, भरण-पोषण करने की बाध्यता का विस्तार वहां तक होगा जहां तक कि जनक या अविवाहिता पुत्री, यथास्थिति, स्वयं अपने उपार्जनों या अन्य सम्पत्ति से अपना भरण-पोषण करने में असमर्थ हो ।

स्पष्टीकरण – इस धारा में "जनक" के अन्तर्गत निःसंतान सौतेली माता भी आती है ।

21. आश्रितों की परिभाषा – इस अध्याय के प्रयोजनों के लिए "आश्रितों" से मृतक के निम्नलिखित नातेदार अभिप्रेत हैं :–

(i) उसका पिता ;

(ii) उसकी माता ;

(iii) उसकी विधवा, जब तक कि वह पुनर्विवाह न कर ले ;

(iv) उसका पुत्र, या उसके पूर्वमृत पुत्र का पुत्र या उसके पूर्वमृत पुत्र के पूर्वमृत पुत्र का पुत्र जब तक कि वह अप्राप्तवय रहे : परन्तु यह तब जब कि और उस विस्तार तक जहां तक कि वह पौत्र की दशा में अपनी माता या पिता की सम्पदा से और प्रपौत्र की दशा में अपने पिता या माता की या पिता के पिता या पिता की माता की सम्पदा से, भरण-पोषण अभिप्राप्त करने में असमर्थ हो ;

(v) उसकी अविवाहिता पुत्री या उसके पूर्वमृत पुत्र की अविवाहिता पुत्री या उसके पूर्वमृत पुत्र के पूर्वमृत पुत्र की अविवाहिता पुत्री जब तक कि वह अविवाहिता रहती है : परन्तु यह तब जब कि और उस विस्तार तक जहां तक कि वह पौत्री की दशा में अपने पिता या माता की सम्पदा से और प्रपौत्री की दशा में अपने पिता या माता की या पिता के पिता या पिता की माता की सम्पदा से, भरण-पोषण अभिप्राप्त करने में असमर्थ हो ;

(vi) उसकी विधवा पुत्री : परन्तु यह तब जब कि और उस विस्तार तक जहां तक कि वह निम्नलिखित में से किसी से अपना भरण-पोषण अभिप्राप्त करने में असमर्थ हो –

(क) अपने पति की सम्पदा से ; या

(ख) अपने पुत्र या पुत्री से, यदि कोई हो, या उसकी सम्पदा से ; या

(ग) अपने श्वसुर या उसके पिता से, या उन दोनों में से किसी की सम्पदा से ;

(vii) उसके पुत्र की या पूर्वमृत पुत्र के पुत्र की कोई विधवा, जब तक कि वह पुनर्विवाह न कर ले : परन्तु यह तब जब कि और

उस विस्तार तक जहां तक कि वह अपने पति की सम्पदा से, या अपने पुत्र या पुत्री से, यदि कोई हो, या उसकी सम्पदा से या पौत्र की विधवा की दशा में अपने श्वसुर की सम्पदा से भी भरण-पोषण अभिप्राप्त करने में असमर्थ हो ;

(viii) उसका अप्राप्तवय अधर्मज पुत्र, जब तक कि वह अप्राप्तवय रहे ;

(ix) उसकी अधर्मज पुत्री, जब कि वह अविवाहिता रहे ।

22. आश्रितों का भरण-पोषण – (1) उपधारा (2) के अपबंधों के अध्यधीन यह है कि मृत हिन्दू के वारिस मृतक से विरासत में प्राप्त सम्पदा से मृतक के आश्रितों का भरण-पोषण करने के लिए आबद्व हैं ।

(2) जहां कि किसी आश्रित ने, इस अधिनियम के प्रारम्भ के पश्चात् मृत हिन्दू की सम्पदा में कोई अंश वसीयती या निर्वसीयती उत्तराधिकार द्वारा अभिप्राप्त नहीं किया है वहां इस अधिनियम के उपबंधों के अध्यधीन यह है कि वह आश्रित उन व्यक्तियों से भरण-पोषण प्राप्त करने का हकदार होगा जो उस सम्पदा को लेते हैं ।

(3) जो व्यक्ति सम्पदा लेते हैं उनमें से हर एक का दायित्व अपने द्वारा ली गई सम्पदा के अंश या भाग के मूल्य के अनुपात में होगा ।

(4) उपधारा (2) या उपधारा (3) में किसी बात के अन्तर्विष्ट होते हुए भी, कोई भी व्यक्ति, जो स्वयं एक आश्रित है, अन्यों के भरण-पोषण के लिए अभिदाय करने का दायी न होगा, यदि जो अंश या भाग उसे अभिप्राप्त हुआ हो उसका मूल्य उससे जो उसे भरण-पोषण के रूप में उस अधिनियम के अधीन अधिनिर्णीत हो, कम हो या कम हो जाएगा यदि अभिदाय करने के दायित्व का प्रवर्तन किया जाए ।

23. भरण-पोषण की रकम – (1) इस बात को अवधारित करना न्यायालय के विवेकाधिकार में होगा कि क्या कोई भरण-पोषण इस अधिनियम के उपबन्धों के अधीन दिलवाया जाए और यदि दिलवाया जाए तो, कितना और ऐसा करने में न्यायालय, यथास्थिति, उपधारा (2) या उपधारा (3) में उपवर्णित बातों को, जहां तक कि वे लागू हैं सम्यक् रूप से ध्यान में रखेगा ।

(2) पत्नी, अपत्यों, वृद्ध या शिथिलांग जनकों को यदि कोई भरण-पोषण की रकम इस अधिनियम के अधीन दी जानी हो तो उसका

अवधारण करने में निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखा जाएगा :–

(क) पक्षकारों की स्थिति और प्रास्थिति को ;

(ख) दावेदार की युक्तियुक्त आवश्यकताओं को ;

(ग) यदि दावेदार पृथक्तः निवास कर रहा है तो इस बात को कि क्या दावेदार का ऐसा करना न्यायोचित है ;

(घ) दावेदार की सम्पत्ति के मूल्य को, और ऐसी सम्पत्ति से या दावेदार के निजी उपार्जनों से या किसी अन्य स्रोत से व्युत्पन्न किसी आय को,

(ङ) इस अधिनियम के अधीन भरण-पोषण के हकदार व्यक्तियों की संख्या को ।

(3) इस अधिनियम के अधीन किसी आश्रित को यदि कोई भरण-पोषण की रकम दी जानी है, तो उस रकम के अवधारण करने में निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखा जाएगा –

(क) मृतक के ऋणों के संदाय का उपबंध करने के पश्चात् उसकी सम्पदा के शुद्ध मूल्य को ;

(ख) मृतक की विल के अधीन उस आश्रित के बारे में किए गए उपबंध को, यदि कोई हो ;

(ग) दोनों के बीच के नातेदारी की डिग्रियों को ;

(घ) उस आश्रित की युक्तियुक्त आवश्यकताओं को ;

(ङ) उस आश्रित और मृतक के बीच के भूतपूर्व संबंधों को ;

(च) उस आश्रित की सम्पत्ति के मूल्य को और ऐसी सम्पत्ति से, या उस आश्रित के निजी उपार्जन से या किसी अन्य स्रोत से व्युत्पन्न किसी आय को ;

(छ) इस अधिनियम के अधीन भरण-पोषण के हकदार आश्रितों की संख्या को ।

24. भरण-पोषण के दावेदार को हिन्दू होना चाहिए – कोई भी व्यक्ति यदि वह किसी अन्य धर्म में संपरिवर्तित होने के कारण हिन्दू न रह गया हो तो इस अध्याय के अधीन भरण-पोषण का दावा करने का हकदार न होना ।

25. परिस्थितियों में तब्दीली होने पर भरण-पोषण की रकम में

परिवर्तन किया जा सकेगा – यदि परिस्थितियों में कोई ऐसी तात्विक तब्दीली हो जाए जिससे भरण-पोषण की रकम में परिवर्तन करना न्यायोचित हो तो भरण-पोषण की रकम, चाहे वह इस अधिनियम के प्रारम्भ के पूर्व या पश्चात् न्यायालय की डिक्री द्वारा या करार द्वारा निश्चित की गई हो, तत्पश्चात् परिवर्तित की जा सकेगी ।

26. ऋणों को पूर्विकता दी जाएगी – धारा 27 में अन्तर्विष्ट उपबंधों के अध्यधीन यह है कि मृतक द्वारा हर प्रकार के संविदाकृत या संदेय ऋणों को उसके अपने आश्रितों के इस अधिनियम के अधीन भरण-पोषण के दावों पर पूर्विकता दी जाएगी ।

27. भरण-पोषण कब भार होगा – इस अधिनियम के अधीन किसी आश्रित का भरण-पोषण का दावा, मृतक की सम्पदा या उसके किसी प्रभाग पर तब के सिवाय भार नहीं होगा जब कि मृतक की विल द्वारा, न्यायालय की डिक्री द्वारा, आश्रित और सम्पदा या उसके प्रभाग के स्वामी के बीच करार द्वारा या अन्यथा ऐसा कोई भार सृष्ट न किया गया हो ।

28. भरण-पोषण के अधिकार पर सम्पत्ति के अन्तरण का प्रभाव – जहां कि आश्रित को किसी सम्पदा में से भरण-पोषण प्राप्त करने का अधिकार है और ऐसी सम्पदा या उसका कोई भाग अन्तरित किया जाता है तो यदि अन्तरिती को उस अधिकार की सूचना है या यदि वह अन्तरण आनुग्रहिक है, तो भरण-पोषण प्राप्त करने के अधिकार का प्रवर्तन अन्तरिती के विरुद्ध कराया जा सकेगा किन्तु ऐसे अन्तरिती के विरुद्ध नहीं जो सप्रतिफल अन्तरिती है और जिसे उस अधिकार की सूचना नहीं है ।

अध्याय 4

निरसन और व्यावृत्तियां

29 [निरसन ।] – निरसन और संशोधन अधिनियम, 1960 (1960 का 58) की धारा 2 और अनुसूची 1 द्वारा निरसित ।

30. व्यावृत्तियां – इस अधिनियम में अन्तर्विष्ट कोई भी बात इस अधिनियम के प्रारम्भ के पूर्व किए गए किसी भी दत्तक पर प्रभाव नहीं डालेगी तथा ऐसे किसी भी दत्तक की विधिमान्यता और प्रभाव का अवधारण ऐसे किया जाएगा मानो यह अधिनियम पारित न किया गया हो ।

---

cover iii

कार्यालय आदेश तारीख 13 फरवरी, 2017 के अनुसार विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित पाठ्य पुस्तकों पर छूट देने की सूची

क्रम सं.	पुस्तक का नाम, लेखक का नाम व प्रकाशन वर्ष (संस्करण)	पुस्तक की मुद्रित कीमत (रुपयों में)	7 वर्ष से पुराने संस्करण पर 35% छूट के पश्चात् कीमत (रुपयों में)	8 से 15 वर्ष पुराने संस्करण पर 50% छूट के पश्चात् कीमत (रुपयों में)	15 वर्ष से अधिक पुराने संस्करण पर 75% छूट के पश्चात् कीमत (रुपयों में)
1.	भारत का विधिक इतिहास - श्री सुरेन्द्र मधुकर - 1989	30	—	—	8
2.	माल विक्रय और परक्राम्य लिखत विधि - डा. एन. बी. परांजपे - 1990	40	—	—	10
3.	वाणिज्य विधि - डा. आर. एल. भट्ट - 1993	108	—	—	27
4.	अपकृत्य विधि के सिद्धांत - श्री शर्मन लाल अग्रवाल - 1993	40	—	—	10
5.	अन्तर्राष्ट्रीय विधि के प्रमुख निर्णय - डा. एस. सी. खरे - 1996	115	—	—	29
6.	श्रम विधि - श्री गोपी कृष्ण अरोड़ा - 1996	452	—	—	113
7.	संविदा विधि - डा. रामगोपाल चतुर्वेदी - 1998	275	—	—	69
8.	चिकित्सा न्यायशास्त्र और विष विज्ञान - डा. सी. के. पारिख - 1999	293	—	—	74
9.	आधुनिक पारिवारिक विधि - श्री राम शरण माथुर - 2000	429	—	—	108
10.	भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम (कालजयी निर्णय) - विधि साहित्य प्रकाशन - 2000	225	—	—	57
11.	हिन्दू विधि - डा. रवीन्द्र नाथ - 2001	425	—	—	106
12.	भारतीय भागीदारी अधिनियम - श्री माधव प्रसाद वशिष्ठ - 2001	165	—	—	41
13.	प्रशासनिक विधि - डा. कैलाश चन्द्र जोशी - 2001	200	—	—	50
14.	भारतीय दंड संहिता - डा. रवीन्द्र नाथ - 2002	741	—	—	185
15.	विधिक उपचार - डा. एस. के. कपूर - 2002	311	—	—	78
16.	विधि शास्त्र - डा. शिवदत्त शर्मा - 2005	580	—	290	—
17.	मानव अधिकार - डा. शिवदत्त शर्मा - 2006	120	—	60	—

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

c vil-

Cover-IV

पी एल डी (सी. डी)-11-2018
भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 17552/69

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं – **उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका** और **उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका** का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिकाओं में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के क्रमशः चयनित सिविल और दांडिक निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । इन पत्रिकाओं को और अधिक आकर्षक बनाने के लिए इनमें जनवरी, 2010 के अंक से महत्वपूर्ण केन्द्रीय अधिनियमों का प्राधिकृत हिन्दी पाठ पाठकों की सुविधा के लिए शृंखलाबद्ध रूप से प्रकाशित किया जा रहा है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका को उपादेय और ज्ञानवर्द्धक बनाने के लिए प्रिवी कौंसिल के निर्णयों को भी समाविष्ट किया जा रहा है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की मासिक कीमत क्रमशः ₹ 195/-, 125/-, 125/- है और इनकी वार्षिक कीमत क्रमशः ₹ 2100/-, 1300/- और 1300/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें ।

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105

विक्रेता : 1. प्रकाशन नियंत्रक, भारत सरकार, सिविल लाइन्स, दिल्ली-110054.
2. सहायक प्रबंधक, कारबार अनुभाग, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, आई. एल. आई. बिल्डिंग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 । दूरभाष : 011-23385259, 23387589, फैक्स : 011-23387589, ई-मेल : am.vsp-molj@gov.in